आत्म-दर्शन

दिशावबोधक :

पं.र. श्री शीतलराजजी म.सा.

लेखक :

धन्ना मुनि

सम्पादक :

श्री गजसिंहजी राठौड़

कृति आत्म-दर्शन
लेखक घना मुनि

प्रकाशक
अखिल भारतीय श्री वर्द्धमान
वीतराग जैन श्रावक सघ
नानाजी का बाग
मोती डूगरी रोड—जयपुर

प्रथम सस्करण १०००,
दिनाक ३१ मार्च, १९९१
सन् १९९१, स २०४८

द्रव्य सहायक
स्व श्री मदनराज जी सिघवी
की पञ्चम पुण्य स्मृति में श्रीमान्
अजीतराज जी सिघवी, पावटा
जोधपुर (राज)

मूल्य 7 00

प्राप्ति स्थान
अ भा श्री वर्द्ध वीत जैन
श्रावक संघ नानाजी का बाग
मोती डूंगरी रोड जयपुर
जे एस एस लाल भवन
चौडा रास्ता जयपुर

मुद्रक
राधा आफसैट
गांधी नगर दिल्ली

प्रकाशकीय

'आत्म-दर्शन' नामक उपन्यास को प्रकाशित करते हुए हमें आन्तरिक आल्हादपूर्ण आध्यात्मिक आत्मतोष का अनुभव हो रहा है । मुक्ति पथ के पथिक मुमुक्षु साधक के लिये पाथेयादि सम्बल स्वरूप इस अभिनव शैली के उपन्यास के प्रकाशन का व्यय भार श्रीमती मीमकंवर सिंघवी ने अपने स्व. पतिदेव श्रीमान् मदनराजजी सिंघवी की पुण्य स्मृति में सहर्ष वहन किया है ।

स्व. श्री मदनराजजी साहब को शैशवकाल से ही इस प्रकार के संस्कार अपने माता-पिता से प्राप्त हुए, जिनके परिणामस्वरूप उनके अन्तर्मन में आचार, विचार और व्यवहार में जीवनभर देव, गुरु, और जैनधर्म के सिद्धांतों के प्रति प्रगाढ़ एवं अटूट आस्था बनी रही । सेवावृत्ति, परोपकारपरायणता, अनासक्ति एवं सहिष्णुता उनके प्रमुख गुण रहे । ई. सन् १९६९ में आफिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद से रिटायर होने के अनंतर तो उनका शेष सम्पूर्ण जीवन समाज-सेवा, साधु-साध्वियों की सेवा और धर्माराधन में ही व्यस्त रहा । चतुर्थ पुत्र सुशिक्षित एवं कुशल व्यवसायी श्री शीतलराजजी ने संसार से विरक्त हो आपके समक्ष अपनी आन्तरिक अभिलाषा व्यक्त की

कि वे इस युग के महान् अध्यात्म योगी अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी, जैनाचार्य श्री हस्तीमलजी म सा के पास श्रमण धर्म में दीक्षित होना चाहते हैं । उस समय आपके सुपुत्र श्री शीतलराजजी "शीतल मेडिकल हाल" का बडी कुशलतापूर्वक सचालन कर रहे थे और उससे सिंघवी सा के परिवार को बडी अच्छी आय हो रही थी । इसके उपरान्त भी श्री मदनराजजी ने तत्काल ही अपने कमाऊ सुपुत्र को दीक्षित होने की सहर्ष अनुज्ञा प्रदान कर दी । दि १८-२-७० को आपकी सुपुत्री इन्द्रकुमारी का पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न हुआ और दूसरे ही दिन प्रात काल श्री सिंघवी सा ने अपने सुपुत्र श्री शीतलराजजी को मुनिधर्म मे दीक्षित करने के लिए आचार्य श्री की सेवा में समर्पित कर दिया । इससे बढकर मोहराज पराजय और अनासक्ति का अन्य ज्वलन्त उदाहरण क्या हो सकता है ?

सन् १९८५ में श्री मदनराजजी सा सहसा उदर रोग से पीडित हुए । परीक्षण के अनन्तर डाक्टरों को ज्ञात हुआ कि आतों में केसर हो गया है । आपके अनुज श्री सी आर सिंघवी और बडे सुपुत्र डॉ जी आर सिंघवी ने आपको जोधपुर से लाकर 'श्री सतोकबा दुर्लभजी अस्पताल जयपुर' में भर्ती करवाया । कुशल डॉ श्री वी एन भार्गव ने अपने विशिष्ट शल्य चिकित्सा विज्ञान का उपयोग कर आपका एक बहुत बडा आपरेशन किया । कतिपय मास तक आप मर्याप्त रूपेण स्वस्थ

प्रतीत होते रहे किन्तु असाध्य रोग के कीटाणु उदर के ऐसे अवयवों एवं अंगोपांगों में प्रविष्ट हो चुके थे, जिनका आपरेशन करना *एकान्ततः* असम्भव था ।

उदरपीड़ा ने पुनः जोर पकड़ा आपको पुनः जोधपुर अस्पताल से लाकर संतोकबा दुर्लभजी अस्पताल में भर्ती करवाया गया । जहां लगभग सवा दो मास तक आपका डॉ. भार्गव उपचार करते रहे । डेढ़ मास पूर्व आपने आलोचनापूर्वक संथारा अंगीकार करने की अभिलाषा व्यक्त की, किन्तु डॉ. जी. आर सिंघवी के उपचार, आत्मीयों की सुश्रूषापरायणता और आपके आत्मबल के कारण आपका अटूट मनोबल आपके असाध्य रोग पर हावी रहा । आप अनासक्त रूप से शुभ ध्यान और प्रभु स्तुति में अपने मन को केन्द्रित किये रहे । अतः उस समय आपको संथारा नहीं करवाया गया । श्री मदनराजजी को अन्तिम समय तक इस बात का गौर के साथ स्मरण रहा कि उनके पिता श्री सुकनराजजी अपनी धर्मपत्नी के आकस्मिक देहावसान का समाचार सुनकर भी सही अर्थ में स्थितप्रज्ञ बने रहे । पौषध में होने के कारण श्री इन्द्रनाथजी जैसे मेधावी एवं वाग्मी संघ मुख्य द्वारा समझाने-बुझाने के उपरान्त भी अपनी धर्मपत्नी के अन्तिम संस्कार में सम्मिलित नहीं हुए, धर्मस्थान में पौषधरत ही रहे । अपने स्व. पिता का इस प्रकार का अनासक्ति योग श्री मदनराजजी के जीवन में प्रारम्भ से लेकर अन्तिम समय तक स्पष्टतः परिलक्षित होता रहा । रोग की पीड़ा के बढ़ने के

साथ-साथ आपकी अनासक्ति एव आपकी शुभकामनाएँ भी उत्तरोत्तर बढती ही रहीं । लगभग डेढ-दो मास तक केवल ग्लुकोज पर ही निर्भर रहे । दु सह्य वेदना के उपरान्त भी आपने अपने तेजस्वी मुखमण्डल पर सिकन नहीं आने दी ।

"अन्न वै प्राणा " इस आर्षोक्ति के अनुसार अन्ततोगत्वा स्नेहरिक्त दीपक की लौ के समान आपकी जीवनी शक्ति मन्द से मन्दतर होने लगी और मुनि श्री शीतलराजजी (आपके सासारिक दृष्टि से पुत्र) ने दि ३१-३-८६ के मध्याह्नोत्तर काल में सवा पाच बजे अनुरोध पर सथारे का प्रत्याख्यान करवाया । भजन कीर्तन के आध्यात्मिक रस से ओत प्रोत शान्तिप्रद वातावरण में आपका सथारा सवा पाच घण्टे तक चलता रहा और रात्रि के साढे दस बजे सीझ गया, सिद्ध हुआ ।

ऐसे धर्मनिष्ठ स्व श्री मदनराजजी की पञ्चम पुण्य स्मृति में प्रस्तुत व्याख्यान वाचस्पति श्री धन्ना मुनि जी द्वारा लिखित उपन्यास श्रीमती मीमकवर सिघवी ने अर्थ सहयोग देकर सघ को अनुगृहीत किया है । एतदर्थ सघ उन्हे हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता है ।

आशा है जिज्ञासु पाठक वृन्द प्रस्तुत पुस्तक का अधिकाधिक अध्ययन कर अपने जीवन को समुज्ज्वल बनाने का लक्ष्य बनायेंगे । इसी मगलमय सद्भावना के साथ ।

अध्यक्ष	महामत्री	मत्री
कल्याणमल जैन	राजेन्द्र जैन "राजा"	सूरजमल लोढा

सम्पादकीय

युग द्रष्टा, युग स्रष्टा, इतिहास मार्तण्ड, अनुपम अध्यात्मयोगी, साम्प्रत युगीन जैन जगत् के महान् ज्योतिर्धर आचार्य दिवंगत पूज्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. के परम कृपा पात्र, अनन्य प्रीतिभाजन भक्त कवि श्री धन्ना मुनि की "आत्म-दर्शन" नाम्नी आध्यात्मिक कृति सहृदय पाठकों के कर-कमलों में प्रस्तुत की जा रही है।

चतुर्थ आरक में किसी समय घटित सत्य-तथ्य पूर्ण इस आश्चर्यजनक एवं चमत्कारकारी कथानक पर अनेक पूर्वाचार्यों एवं भक्त कवियों ने समय-समय पर अपनी-अपनी विभिन्न नामों वाली कृतियों में पर्याप्त प्रकाश डालकर अपनी लेखनी को कृत कृत्य किया है। पूर्व के युग में आषाढ़ भूति की ढालें बड़ी ही लोकप्रिय रही हैं।

जैन जगत् के उदीयमान् भक्त-कवि-लेखक-चिन्तक एवं मधुर व्याख्याता श्री धन्ना मुनि ने प्राञ्जल-पौढ़ साहित्यिक भाषा में इस शिक्षाप्रद आध्यात्मिक कथानक को एक अभिनव आकर्षक परिवेश अथवा शैली में प्रस्तुत किया है। मान्य आगम जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में

उल्लिखित भरत षट्खण्ड-विजय सम्बन्धी तथ्यो को आधार बना कवि मुनि श्री ने इस कथानक को सर्वांग पूर्ण बनाने का सफल प्रयास किया है जो स्तुत्य है।

"मन एव मनुष्याणा
कारण बन्धमोक्षयो ।"

तथा

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य, न मेधया वा बहुनाश्रुतेन।
यमेवैश वृणुते तेन लभ्य, यस्यैश आत्मा विवृणुते तनु स्वाम् ।।

इन दो निगूढ तथ्यो का इस कृति के माध्यम से दिग्दर्शन कराने मे कवि मुनिश्री की लोह लेखिनी ने अपनी अद्भुत् क्षमता का परिचय दिया है। ऋषभाष्टक तो वस्तुत "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"—इस सूक्ति के—मुनिश्री मे चरितार्थ होने का पूर्वाभास करवाता है।

भक्त मुनि श्री अपनी प्रपामयी लेखिनी से भव्यजनो को आध्यात्मामृत का उत्तरोत्तर अधिकाधिक पान करवाते रहे, इसी शुभ कामना के साथ—

गजसिह राठोड
न्याय-व्याकरण-तीर्थ



पं. र. श्री शीतलराज जी म. सा. के संसार पक्ष पिता श्री मदन राज जी
सिंधवी एंव मातु श्री भीम कंवर, जोधपुर [राज.]

प्रस्तावना

प्रो. कल्याण मल लोढ़ा

जैन परम्परा में आषाढ़भूति का जीवन लोकप्रिय रहा है। आषाढ़ भूति के गुरु आचार्य धर्मरुचि थे। उनको जीवन संघर्ष की जिस व्यापकता के साथ सारी चुनौतियों और विसंगतियों के मध्य परमोत्कर्ष और वीतरागत्व प्राप्त हुआ, वह महत्वपूर्ण ही नहीं अत्यन्त प्रेरणान्स्पद और मार्गदर्शक भी है। अभिधान राजेन्द्र के अनुसार विश्वकर्मा नट के घर में मोदक प्राप्ति के निमित्त आषाढ़भूति ने चार रूप बनाए: स्वयं, काणा, कुब्ज, और कुष्ट। इस प्रकार विश्वकर्मा की कन्याओं ने उन्हें पांच बार मोदक भिक्षा में दिये। विश्वकर्मा नट ने इसे देखकर उन्हें अपनी रंगशाला में लेना चाहा और इसके लिए प्रयास भी किया। कामासक्त होकर आषाढ़भूति ने अपने गुरु के चरणों में प्रणाम कर रजोहरण का त्याग किया और प्रतिकूल कर्मोदय एवं प्रतिपक्ष भावना की दुर्बलता से वे पथ से विचलित होकर सांसारिक मोह कर्म में उलझ गए एवं विश्वकर्मा की दोनों पुत्रियों का पाणिग्रहण कर विश्वकर्मा की नट शाला में रंगकर्मी बने। नाटक के अभिनयोपरान्त उन्हें पुनः आत्मज्ञान हुआ और सब कुछ त्याग, अपने गुरु के चरणों में पहुंचकर वे पुनः वीतरागी बने।

जैन साहित्य में आषाढभूति का यह जीवन प्रसग अनेक रूपों में व्याख्यायित हुआ है। १७वी शताब्दी में मुनि कनकसोम ने आषाढभूति सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा। आधुनिक युग में प्रसिद्ध आचार्य-श्री तुलसी का आषाढभूति पर मुनियों ने अनेक ढालों की रचना की। आचार्य जवाहरलालजी व आचार्य गणेशीलालजी महाराज अपने प्रवचनों में बहुधा आषाढभूति के जीवन का प्रसगोल्लेख करते थे। इसी श्रृखला मे श्री धन्ना मुनि ने आषाढभूति पर एक लघु उपन्यास "आत्म दर्शन" की प्रेरक रचना की है। "आत्म दर्शन" में उन्होने परम्परा से प्राप्त कथानक का आधार लेकर कल्पना के अभिनिवेश से औपन्यासिक रूप के साथ-साथ नाटकीय तत्व और रग मचीय विधान से इसे सयुक्त किया है। धर्मरुचि का नाम धर्म घोष रखा है। सारा ग्रन्थ मगध सम्राट् के वैभव से ससिक्त है। इस रचना का मूल प्रयोजन है– जीवन के अपकर्ष और उत्कर्ष का, विभिन्न कषायों और अशुभ कर्मोदय के आस्रव का सवर और निर्जरा द्वारा निवारण। आषाढभूति ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विराधना के उपरान्त पुन उनके विशुद्ध रूप के पालन की आराधना करके सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। जिनदास महत्तर का कथन है–" विगता आराहणा विराहणा"। आचार्य हरिभद्र के अनुसार 'कस्य चिद् वस्तुन खण्डन विराधन, तदेव विराधना"। आषाढभूति चारों कषायों के अतिचार से पीडित होते हैं।

कषायों का प्रबल वेग व अध्यात्म दोष उनके चारित्र को मलिन करते हैं । अशुभ कर्मोदय का प्राबल्य उन्हें पतित करता है । चारों विकथाओं स्त्री, भत्त, देश और राज' से उनकी संयम साधना नष्ट होती है, पर अन्त में वे आत्म स्वरूप प्राप्त कर केवल ज्ञानी बनते हैं । जीवन में चारों ओर बन्धन और विकर्षण का जाल बिछा है– आत्म-विकृति और मिथ्यात्व के भयंकर व्यामोह और ऊहापोह में उलझे हुए व्यक्ति का भटके हुए मन को पुनः संयम-पथ पर अग्रसर करना ही कामगुण से आत्मा का प्रतिक्रमण है । श्री धन्ना मुनि ने इसी महान सत्य का उद्‌घाटन अपने इस उपन्यास में किया है ।

कोई भी रचनात्मक उपक्रम अपनी अन्तर्भूमि में एक महान् उद्देश्य को समाहित कर जीवन के लिए प्रेरणास्पद बनता है । भाषा तो बाह्य साधन है– उसका बैखरी रूप । भावों का अन्तर्प्रवाह ही वह पयस्विनी है, जो कृति को मंगलमय बनाकर उसे सार्थक और सक्षम करती है । तुलसीदास का यह कथन सर्वदा और सर्वथा सत्य है कि साहित्य सुरसरि के समान लोकमंगलकारी होता है और ऐसी रचना "उपजंत अनत अनत छवि लहहिं" । लोक मंगल की यह भावना वायवी नहीं होती, उसका आधार ठोस होता है, प्रत्यक्ष होता है । लोक जीवन के अनवरत प्रवाह में वह अपनी सारवत्ता और अर्थवत्ता से जीवन की तिमिराच्छन्न धनराजिकाओं के मध्य आलोक रश्मियां

विकीर्ण कर मनुष्य को ज्योति सम्पन्न करती है , आत्म विद् । श्री धन्ना मुनि के इस उपन्यास की यही सार्थकता है, जिसे उन्होने महान् गुरू और अध्यात्म योगी पूज्य पाद श्री हस्तीमलजी महाराज से प्राप्त की । उनका कृतिकार जागरूक है । वे एक निष्ठ साधक और चिन्तक हैं । उनकी सर्जनात्मक अनुभूति उपयुक्त अभिव्यक्ति का माध्यम खोजकर जीवन के मागलिक विधान को प्रस्तुत करती है । प्रस्तुत उपन्यास लेखन इसका प्रमाण है । मैं यह स्वीकार करता हू कि साहित्यिक दृष्टि से यह एक प्रोढ कृति है । इसमें परिमार्जन और परिष्करण की भी आवश्यकता नहीं है । जैसे नदी के तट पर खड़ा व्यक्ति उसके पाट को न देखकर जल की स्वच्छता और निर्मलता देखता है और देखता है उसके आतरिक सौन्दर्य का जो अपने में सनातन सत्य का उद्घाटन करता है, उसका सधान । आत्मवाद के उत्कर्ष को चित्रित करने वाला यह लघु उपन्यास इसी तथ्य का प्रमाण है । मुनि श्री को मेरी पणति । मुझे विश्वास है कि उनकी रचनात्मक शक्ति निरन्तर विकसित और ऊर्ध्वगति सम्पन्न होती रहेगी ।

कल्याण मल लोढा
भूतपूर्व कुलपति, जोधपुर विश्वविद्यालय
व वरिष्ठ आचार्य (सेवानिवृत्त), कलकत्ता विश्व विद्यालय

समर्पण

भीषण भवाब्धि में डगमगाती मेरी
नैया को सत्पथ पर प्रवाहित
करने वाले महापुरुषों
के कर कमलों में सादर समर्पित

— धन्ना मुनि

आत्म-दर्शन

चतुर्थ आरक का समय था। राजगृह नगर के राजपथ, चतुष्पथों और श्रृंगाटकों में श्वेत हाथियों पर बैठे हुए राजपुरुष पटह-निनाद के साथ घोषणा कर रहे थे– "महाराजाधिराज मगधेश पुरजनों एवं परिजनों के साथ महान् आचार्य श्री धर्म घोष के दर्शनार्थ पधार रहे हैं। सभी श्रद्धालु धर्मनिष्ठ मुमुक्षु जो दर्शनों के इच्छुक हों, शीघ्र ही उद्यान की ओर प्रस्थित हों।

अपने महान् धर्माचार्य के शुभागमन का सुसंवाद सुनते ही राजगृह नगर के नागरिक आनंद के अगाध सागर में पुनः पुनः निमज्जित होते हुए मुनि दर्शनार्थ सुन्दर-सादे परिधान धारण कर सुसज्जित होने लगे।

अपनी चतुरंगिणी सेना, अमात्यों, राजमहिषियों, युवराज्ञियों आदि परिजनों एवं पौरजनों के साथ मुनिदर्शनार्थ उद्यान की ओर जाते हुए मगधराज के इस परिकर के साथ नगर के विभिन्न चतुष्पथों से निकल निकल कर रंग-बिरंगे परिधानों से सुशोभित नर-नारियों के वृन्द सम्मिलित होने लगे।

उद्यान की ओर उमड़ते हुए नगर के विभिन्न विभागों से जन समूह ठीक उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार दिशाओं-विदिशाओं से अपने पूर्ण प्रवाह के साथ सागर में सम्मिलित होती नदियां।

मगधराज के साथ यह विशाल जन-समूह उद्यान में पहुचा। मगधराज के मुकुटमण्डित उत्तमाग के मुनि चरणों मे अवनत होते ही सहस्रो शीर्ष भी एक साथ झुक गये।

वदनानतर मगधेश्वर और उनके साथ आये हुये सभी परिजन प्रजाजनादि आचार्य श्री के सम्मुख उपदेश श्रवणार्थ बैठे। अतिशयज्ञानी आचार्य श्री धर्मघोष ने ससार और सासारिक प्रपचो की निस्सारता एव क्षण-भगुरता पर प्रकाश डालते हुए श्रोताओ को यथाशक्ति धर्मपथ पर अग्रसर होने के लिये प्रेरणा प्रदान की। अनेक भव्यो ने आचार्य श्री के उपदेश से प्रभावित होकर अनेक प्रकार के व्रतनियम तथा सावद्य कार्यों से दूर रहने के प्रत्याख्यान ग्रहण किये।

उपदेश श्रवणानतर मगधेश एव अन्य जनो के नगर की ओर लौट जाने के पश्चात् एक युवावय के मुनि ने आचार्य श्री के सम्मुख उपस्थित हो अभिवादन अभि-वदनानतर अति विनम्र स्वर मे निवेदन किया—"भगवन्! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं नगर मे मधुकरी हेतु जाना चाहता हू।"

आचार्य श्री धर्मघोष ने स्नेह सुधासिक्त स्वर में कहा—"हा! हा! तपस्विन् मुने! आज तुम अपने अष्टम-तप का पारणा कर लेना। भिक्षाटन हेतु तुम नगर के सभी वर्गों के गृहस्थो के घरो मे भ्रमण करो।"

आचार्य श्री को साञ्जलि शीष झुका कर "जैसा भगवन् का आदेश" कहते हुये वह कृष-काय घोर तपस्वी मुनि भिक्षाचरी हेतु राजगृहनगर की ओर प्रस्थान करने को ज्योंही उद्यत हुये आचार्य श्री धर्मघोष ने अपने शिष्य को सावधान करते हुए कहा:-

"वत्स! तुमने घोर तपश्चरण के साथ-साथ सागर के समान अगाध द्वादशांगी में पुनः पुनः निमज्जन कर आगमों के मर्म को जाना है। निष्काम भावना से किये गये घोर तपश्चरण और पूर्वों के अपरिमेय ज्ञान के परिणाम स्वरूप तुम्हें अनेक प्रकार की उच्च कोटि की लब्धियां स्वतः ही प्राप्त हो गई हैं। थोड़ी सी असावधानी भी स्खलना का कारण बन सकती है। अतः तुम्हें इन दिनों पूर्णतः सजग रहने की आवश्यकता है।"

"आपकी आज्ञा को अक्षरशः शिरोधार्य करता हूं भगवन्!" इस विनम्र अभिव्यक्ति के साथ अपने आचार्य देव को नमन कर अति कृषकाय युवक मुनि ने राजगृह नगर की ओर भिक्षार्थ प्रस्थान किया।

मुनि का नाम था आषाढ़भूति। प्रतप्त स्वर्ण के समान अरुणिमा लिये सम्मोहक सुन्दर वर्ण, सुगठित समुन्नत देह-यष्टि, तोते की चोंच के समान तीखी नासिका, आजानुभुज, व्यूढ़ोरष्क, वृषस्कन्ध मुनि आषाढ़भूति अचपल गति से पथ पर दृष्टि रखे नगर में प्रवेश कर मधुकरी हेतु प्रमुख एवं गौण पथों में अटन करते हुए एक

सुविशाल भवन के समीप पहुचे।

उनके कर्णरन्ध्रो मे अन्तर को आन्दोलित कर देने वाली गीतध्वनि-गुजरित हो उठी। विविध वाद्ययत्रो की सुमधुर ध्वनि की ताल के साथ सधे हुए आरोह अवरोह के कौशल को प्रकट करने वाली सगीत की सुमधुर स्वर लहरियो ने मुनि आषाढभूति को हठात् अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

विशाल भवन का मुख्य द्वार पार कर स्फटिकमणि की शिलाओ से निर्मित सौपान मार्ग से वे एक भव्य कक्ष मे पहुचे। मुनि को अपने कक्ष मे प्रविष्ट हुये देख सुरबालाओ के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाली दो कुमारियाँ अपने वाद्य यत्रो को एक ओर रख उठ खडी हुई, उन दोनो बालिकाओ ने आगे बढ़कर मुनिराज को प्रगाढ श्रद्धा भक्ति के साथ वदन-नमन किया।

किशोरवय पार कर इन दोनो गन्धर्वकन्योपमा बालाओ ने यौवन से अठखेलिया करना प्रारम्भ किया ही था। दोनो की वय मे दो वर्ष का अन्तर प्रतीत होता था। ज्येष्ठा कन्या ने वातावरण मे अमृत घोल देने वाले सुमधुर स्वर मे अभ्यर्थना की— "षट्जीवनिकाय के सच्चे बन्धु! मुनिवर! आपने इस कुटिया को अपने चरणो की रज से पवित्र कर हम सब पर बडी कृपा की, अब विशुद्ध आहार पानी ग्रहण कर हमे कृतार्थ कीजिये।"

वीणा की झकार के अनुरूप अतीव सुमधुर स्वर मे

दूसरी बाला ने आग्रहपूर्ण प्रार्थना की—"हां, मुनिपुंगव! मेरी भगिनी के साथ-साथ मैं भी आपसे प्रार्थना करती हूं कि निर्दोष आहारपानी ग्रहण कर हमारे जीवन का सबसे सुन्दर, महार्घ्य, और महत्वपूर्ण दिन आज सिद्ध कीजिए। सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवों पर भी दया करने वाले हे दयानिधान! आप इन मानव देह धारिणी बालाओं पर भी अवश्यमेव कृपा करेंगे—ऐसी हमारी धारणा है।"

रजत निर्मित एक पात्र के ढक्कन को खोलकर बड़ी बालिका ने उस में से दो बड़े मोदक दोनों हाथों में थामते हुए मुनि आषाढ़भूति से निवेदन किया— "लीजिए करुणाकर! हम पर करुणा कर हमें कृतार्थ कीजिये।"

मुनि ने अपनी झोली से भिक्षा पात्र निकालकर उस बाला के सम्मुख किया, बड़ी बालिका ने दोनों लड्डू मुनि के पात्र में रखते हुए एक अनिर्वचनीय आनंद और संतोष की श्वांस ली। उसके मुखपर उभर कर आंखों के माध्यम से छलकती हुई आनंद सागर की लहर से यही प्रकट हो रहा था कि मानो उसे अपने जीवन में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हुई है।

मुनि अपने भिक्षा पात्र को समेटने ही वाले थे कि उस दूसरी बाला ने रजत पात्र से दो और लड्डू अपने हाथ में लेकर आग्रह भरे स्वर में पात्र को झोली में रखने का उपक्रम करते हुए मुनि से अपने आन्तरिक उद्वेग को वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त कर कहा—"भगवन्!

अपनी इस अकिंचन चरण चेरी को भी लाभान्वित कर कृतार्थ कीजिये।" बालिका के अन्त करण से उद्भूत उद्गारो से मुनि आषाढ़भूति को ऐसा प्रतीत हुआ यदि उसकी आशा निराशा मे परिवर्तित हुई तो वह रो देगी, उसका सुकोमल हृदय वज्राघात से प्रताडित हो जायेगा। दया द्रवित मुनि आषाढभूति ने उस निर्दोष आहार को ग्रहण करने हेतु अपना भिक्षापात्र उस बाला के समक्ष रखा। उस बाला के मुख पर हर्षातिरेक की छटा प्रबल वेग से प्रकट हुई और उसने शीघ्रता पूर्वक दोनो लड्डू मुनि के भिक्षापात्र मे रख दिए।

भिक्षा ग्रहण करने के अनतर मुनि आषाढ़भूति ने उस कक्ष से प्रत्यावर्तन किया। सौपानो से उतरते समय उनके मन में विचार आया, "ये मोदक वस्तुत अतीव उत्तम, सुगंधित और पौष्टिक पदार्थों से निर्मित हैं। जिस समय उस बाला ने रजत-निर्मित पात्र के ढक्कन को खोला, तत्काल सम्पूर्ण कक्ष अतीव सम्मोहक, मधुर एव मादक सुगध से ओतप्रोत हो गया, इनकी सुगन्ध से ही यह अनुमान किया जा सकता है कि ये मोदक वस्तुत अतीव स्वादिष्ट होगे।"

उसी समय उनके अन्तर में एक कुतूहल जनक विचार उत्पन्न हुआ—परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री धर्मघोष प्रभु के अत्र विराजित सम्पूर्ण शिष्य वर्ग को इस प्रकार के मोदकों से ही तृप्त किया जाय तो कितना अच्छा हो,

किन्तु एषणीय आहार ग्रहण करने वाले श्रमण भिक्षुक के लिये यह संभव नहीं कि इतने विशाल श्री संघ को एक ही प्रकार के ऐसे भोज्य पदार्थों से प्रतिलाभित किया जाय। हां, बिना किसी प्रकार की कामना के मुझे जो वैक्रिय लब्धि हुई है, उसकी सहायता से मैं इतने मोदक तो अवश्यमेव प्राप्त कर सकता हूं कि थोड़ा-थोड़ा अंश सभी साधुओं को भोजन काल में दिया जा सके।"

सौपान से उतरते ही उस विशाल प्रासाद के पार्श्वस्थ भाग में बगीचे पर मुनि आषाढ़भूति की दृष्टि पड़ी। वे तत्काल उस उद्यान में प्रविष्ट हुए और एक विशाल वृक्ष की ओट में खड़े होकर उन्होंने क्षणभर में ही एक वयोवृद्ध मुनि का रूप धारण कर लिया।

इस प्रकार रूप परिवर्तन के अनंतर मुनि आषाढ़भूति पुनः सौपान मार्ग से ऊपर चढ़े और उसी कक्ष में प्रविष्ट हुये। एक और मुनि को भिक्षार्थ अपने यहां उपस्थित देख उन अनुपम रूपलावण्य सम्पन्न कन्याओं के हर्ष का पारावार न रहा, पूर्ववत् प्रगाढ़ श्रद्धाभक्ति के साथ वंदनानंतर, उन दोनों बालाओं ने नवागन्तुक वयोवृद्ध मुनि को भी उसी रजत पात्र में से लड्डुओं की भिक्षा प्रदान की।

अब मुनि के पास आठ लड्डु आ गये थे। मुनि ने मन ही मन विचार किया कि अब आठ लड्डू और प्राप्त कर लिये जायँ तो इन लड्डुओं के सुगन्ध पूर्ण स्वाद का रसास्वादन

सभी मुनियो को कराया जा सकेगा। इस प्रकार विचार कर मुनि आषाढ़भूति सौपान मार्ग से उतर कर पुन उसी उद्यान मे पहुंचे और उसी वृक्ष की ओट मे खडे होकर उन्होंने एक प्रौढ़ वय के मुनि के रूप मे अपने आपको परिवर्तित किया और पुन उसी कक्ष मे पहुचे।

सुरबालोपमा वे दोनो रूपवती कन्याये तीसरे अन्य मुनि को अपने यहा उपस्थित देख परम प्रमुदित हुईं। उसी प्रकार भक्ति श्रद्धा और निष्ठा के साथ वदनानन्तर उन दोनो कन्याओ ने मुनि श्री को उसी रजत पात्र मे से फिर लड्डुओ की भिक्षा प्रदान की। भिक्षापात्र लिये मुनि पुन उसी नजर बाग मे, उसी वृक्ष की ओट मे पहुचे और इस बार उन्होने कामदेव को भी तिरस्कृत कर देने वाले अति कमनीय किशोर मुनि का रूप धारण किया। भिक्षा पटलक मे रिक्त पात्र को ऊपर रख वे पुन उसी कक्ष की ओर प्रस्थित हुए। पुन पुन इस प्रकार इच्छानुरूप रूप परिवर्तन की प्रक्रिया को उन दोनों कन्याओ का पिता, महान् मगध साम्राज्य का नाट्य विद्या निष्णात राजकीय सूत्रधार देख रहा था। वह तत्काल अपनी पुत्रियों के कक्ष मे पहुचा और उसने अपनी दोनो पुत्रियो को सक्षेप मे आदेश दिया— "येन केन प्रकारेण आगन्तुक मुनि को अपने मोह-पाश में इस प्रकार आबद्ध करे कि मेरे साथ ही साथ तुम दोनो के भाग्य भी पराकाष्ठा स्पर्श करने लगे। यह तुम्हारे पुत्र विहीन पिता की अटल आज्ञा है। शेष सब

कुछ कार्यसिद्धि के पश्चात् शनैः शनैः ज्ञात हो जायेगा।"

दोनों बालाओं ने साञ्जलि शीष झुका कहा– "पितृदेव! आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करने का प्रयास करेंगी और जो एतद्विषयक कला-कौशल आज तक हमने सीखा है, उसका प्रयोग करने में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होगी।" राजकीय नाट्यमञ्च के सूत्रधार के जाते ही मुनि आषाढ़भूति अति कमनीय किशोरवय के मुनि का रूप धारण किये हुए कक्ष में प्रविष्ट हुए।

दोनों बालाओं ने मुनि के मन को जीतने के लिये प्राण पण से सभी प्रयास किये। मुनि केवल मोदक ग्रहण करने के लिए ही चौथी बार उस कक्ष में प्रविष्ट हुए थे। उन्होंने उन दोनों बालाओं के मन को विचलित कर देने वाली भावभंगियों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। न उनके तपोपूत अन्तर्मन में किसी प्रकार के विकार को प्रवेश करने का अवकाश ही प्राप्त हुआ। भिक्षा प्रदान करने के स्थान पर कटाक्षनिक्षेप और कामोत्तेजक भ्रू-भंगियों के प्रयोग को देखकर मुनि आषाढ़भूति ने मुख मोड़ा और सौपान की ओर चल पड़े।

ज्येष्ठा तडित् की चमक के समान उनके सम्मुख आई और हठात् धड़ाम से निश्चेष्ट हो द्वार पर गिर गई। कनिष्ठा बाला ने त्वरित गति से आगे बढ़कर अपनी अग्रजा के मस्तक को अपने अङ्क में रखकर व्यजन

डुलाना प्रारम्भ किया। वह कभी अपनी निश्चेष्ट पडी अग्रजा के मुख की ओर तो कभी कामदेवोपम किशोर मुनि के मुख की ओर देखने लगी।

इस प्रकार पत्थर को भी पानी कर देने वाले अपने करुणा भरे त्रियाचरित्र के अनतर उसने अपना मस्तक मुनि के चरणों के समक्ष आगन पर रखते हुए वीणा की झकार तुल्य सुमधुर स्वर में कहना प्रारम्भ किया—

"हे कृपानाथ! बिना कुछ ग्रहण किये ही आप यहा से लौटने लगे, इससे मेरी अग्रजा के हृदय पर गहरा आघात लगा है। यह मेरी बडी बहिन जहा एक ओर आदर्श गुण ग्राहिका है, वही दूसरी ओर अत्यत भावुक भी है। मधुर स्वर से यदि आप इसे सबोधित नही करेगे, तो मुझे आशका है कि देह पिजरे को तोड इस के प्राण पक्षी किसी अदृश्य लोक की ओर प्रयाण कर देगे।" स्वामिन्! अन्तर्मन के आहत की बात वही जानता है, जिसका अन्त-र्मन आहत हो चुका हो। हे पुरुषोत्तम! वस्तुस्थिति यह है कि मेरी यह ज्येष्ठा सहोदरा आपको अन्तर्मन से अपना सर्वस्व प्रथम दृष्टि मे ही समर्पित कर चुकी है। यदि आप मृत-सजीवनी सुधा स्वरूपा अपनी सुमधुर वाणी से इसे तत्काल आश्वस्त न कर देंगे तो यह इसी क्षण इह-लीला समाप्त कर देगी।"

उस कनिष्ठा बाला ने एक बार और अन्तस्तल भेदिनी अद्भुत दृष्टि से मुनि की ओर देखते हुए कहा—"इस

प्रकार चींटी की भी रक्षा के लिये सदा सजग रहने वाले आप दो अबलाओं के अकाल-कालकवलित होने के कारण बन जायेंगे।"

इस प्रकार अपने सधे हुए कटाक्षों की अनवरत वर्षा के अनंतर उस किशोरी ने अमोघास्त्र-रुदन का आश्रय लिया। वह फफक-फफक कर रोने लगी, सुबकियां भरने लगी। सुदीर्घ काल से अष्टम तप करते चले आ रहे आगममर्मज्ञ, तपस्वी मुनि आषाढ़भूति की मनोभूमि पर अब तक के इन बालाओं के त्रियाचरित्र का किंचित् मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा था, किन्तु इस अमोघास्त्र के प्रहार से उनका अजेय मनोबल हिल उठा, और "तमाशा खुद न बन जाना तमाशा देखने वाले" के अनुसार कौतुक करने के इच्छुक मुनि स्वयं कौतुक के जाल में फंस गए।

उन्होंने अब कभी अचेतन अवस्था में पड़ी हुई ज्येष्ठाबाला के सुकोमल मुख कमल की ओर तो कभी अनवरत अश्रुधाराओं की गंगा-यमुना प्रवाहित करती हुई कनिष्ठ बाला की सुगठित सुडौल एवं सम्मोहक कदलीदल यष्टिका तुल्य देह यष्टि के अंग-प्रत्यंग की ओर दृष्टि-निपात करना प्रारम्भ किया। मुनि को अनुभव हुआ कि उनका मन उनकी मुट्ठी से निकलकर भागता चला जा रहा है। यहां एक भक्त कवि का निम्नांकित श्लोक स्मृतिपटल पर उतर रहा है:-

स्नेह परित्यज्य निपीय धूम्र
कान्ताकचामोक्षपथ प्रपन्ना ।
नितम्ब सङ्गात् पुनरेव वध्दा,
अहो दुरन्ता विषयेषु शक्ति ।।

अर्थात्—स्नेह (घी, तेल आदि की चिकनाहट) का परित्याग कर और धूम्र का सेवन कर मानिनी के सिर के बाल मोक्ष के पथ की ओर वढ़ गये अथवा मुक्त हो गये।

किन्तु नितम्वो के साथ सग होते ही वे सिर के लम्बे लम्बे वाल पुन वधन मे डाल दिये गये—पुन वाध दिये गये। हाय! विषयो मे आसक्ति वस्तुत अतीव दु खद दु खान्त कारिणी है।

वर्षों की विशुद्ध सयम साधना, ज्ञानाराधना, तपश्चरण और समर्थ गुरु के कृपा प्रसाद के परिणाम स्वरूप जिन आषाढ़भूति मुनि ने अपने आत्मदेव को प्रचण्ड अग्नि मे पुन पुन प्रतप्त स्वर्ण के समान समुज्वल वना लिया था, वे कुछ ही क्षणों के कामिनी ससर्ग मे सुपथ से स्खलित होने लगे विरक्ति के अथाह सागर मे डूबा उनका मन कामिनियो के साथ कुछ ही क्षण के सहवास-ससर्ग के परिणामस्वरूप पुन वासना के विषमय पङ्क की ओर उन्मुख हो गया।

उन दोनो वालाओ के सुनियोजित सम्मोहक जाल मे अन्ततोगत्वा मुनि आषाढ़भूति ऐसे फसे कि जिस प्रकार पतगा दीपक की लौ पर झपापात करने को उद्विग्न हो

उठता है, व्यग्र हो उठता है, ठीक उसी प्रकार वे अहर्निश प्रतिपल उन दोनों किशोरियों के सहवास में रहने हेतु उत्कट रुपेण लालायित हो उठे।

उन दोनों ललनाओं के साथ मुनि आषाढ़भूति का आलाप-संलाप लगभग अर्धघटिका पर्यन्त चला और वे उन दोनों ललनाओं के वाक् जाल में पूरी तरह आबद्ध हो गये। यह क्रम कुछ लम्बे समय तक चलता किन्तु हठात् मुनि आषाढ़भूति को अपने गुरुदेव का स्मरण हो आया। उन्होंने उन दोनों किशोरियों को आश्वस्त करते हुए कहा– "मैं अपने परमोपकारी गुरु आचार्य श्री धर्मघोष से पुनः गृहस्थधर्म में प्रविष्ट होने की आज्ञा प्राप्त कर शीघ्र ही लौट रहा हूं। तुम मन में किसी प्रकार की आशंका मत करो। मैंने अपने अन्तर्मन में सभी भांति सोच विचार कर दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अब मैं तुम दोनों के साथ अपने अवशिष्ट जीवन को व्यतीत करुंगा।"

आषाढ़भूति की इस आश्वासन पूर्ण बात को सुनने के अनंतर भी उन दोनों किशोरियों के नेत्रों से गंगा-यमुना प्रवाहित होती रही। यह वस्तुतः त्रियाचरित्र का वह अमोघ रामबाण था, जो लक्ष्यवेध के अनन्तर पुनः तूणीर में आ प्रविष्ट होता है। इस अमोघास्त्र के प्रहार से मुनि विह्वल हो उठे और "मेरे वचन कभी अन्यथा नहीं होते, गुरुदेव से अनुमति प्राप्त कर मैं बिना किसी प्रकार का

विलम्ब किये लौट आऊगा" —कहते हुए मुनि आषाढ़-भूति अपनी झोली उठा, द्रुतगति से उस उद्यान की ओर लौट गये,जहा आचार्य धर्मघोष अपने शिष्यसघ के साथ विराजमान थे।

अपने गुरुदेव के समक्ष पहुचते ही मुनि आषाढ़भूति ने उन्हे भक्ति सहित वदन किया और साजलि शीष झुका उनके समक्ष खडे हो गये। अतिशय ज्ञानी गुरु ने मुनि आषाढ़भूति को सबोधित करते हुए कहा—"वत्स! 'कर्मणो गहना गति ' अन्यथा तुम्हारे जैसा क्रियानिष्ठ, तपोनिष्ठ, धर्मनिष्ठ और वैराग्य के प्रगाढ़ रग मे वाह्याभ्यतरत पूर्णरूपेण रंजित श्रमणवर की इस प्रकार की गति नही होती। मैं देख रहा हू तुम अवश्य जाओगे, तुमने जाने की अन्तर्मन मे ठान ली है, 'जहा सुह देवाणुपिया' किन्तु उन दोनो वालाओं के साथ परिणय सूत्र मे वधने से पूर्व उन दोनो से इस वात की प्रतिज्ञा करवा लेना कि उस घर मे मदिरा और आमिष का कभी प्रयोग नही किया जायेगा, और जिस दिन मद्य अथवा मास उस घर मे होगा उसी दिन तुम पुन उस घर का सदा के लिये परित्याग कर श्रमणत्व अगीकार कर लोगे।"

"यथाज्ञापयति देव।" कहते हुए वन्दनानतर मुनि आषाढ़भूति ने भिक्षापात्र, रजोहरण और मुखवस्त्रिका गुरु के समक्ष रखकर मगधेश की नाट्यशाला के सूत्रधार के भव्य भवन की ओर प्रस्थान किया। वहा

पहुंचते ही आषाढ़भूति ने अपना प्रण रखा, जिसे सबने अक्षरशः स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर सूत्रधार के प्रासाद में आषाढ़भूति का बड़ा स्वागत हुआ। तैल, अभ्यंगादि के मर्दन के अनन्तर उन्हें सुगन्धित जल से स्नान कराया गया। सोने के तारों के साथ रेशम के धागे से बने बहुमूल्य वस्त्रों एवं अनमोल मणिमाणिक्यों से जटित आभरणों से आषाढ़भूति अलंकृत किये गये। शीघ्र ही शुभ घड़ी निश्चित की गई और उसमें नाट्यशाला के सूत्रधार ने अपनी दोनों कन्याओं का विवाह आषाढ़भूति के साथ कर दिया।

दाम्पत्य जीवन में प्रवेश के अनंतर आषाढ़भूति अहर्निश ऐहिक सुखोपभोगों में निमग्न रहते। नाट्याधिराज के निर्देशानुसार आठों प्रहर विविध वाद्यों और संगीत की स्वर लहरियां दो सुर सरिताओं की भांति उस सुविशाल सदन में अपने पूरे प्रबल वेग के साथ प्रवाहित होने लगीं। नाट्याधिराज का अभिप्रेत था आषाढ़भूति को नाट्य शास्त्र में निष्णात कर आर्यधरा का सर्वोत्कृष्ट-सर्वश्रेष्ठ नाट्यकार बनाना।

अपने पिता के अभिप्रेतानुसार आषाढ़भूति की नवोढ़ाएं विविध वाद्य यंत्रों की सम्मोहक ताल के साथ अपने कोकिल कंठों और गीतों के माध्यम से अपने प्रियतम को संगीत-सागर में आकण्ठ निमग्न रख अप्रत्यक्ष रूप में आषाढ़भूति को संगीत का न केवल सच्चा उपासक ही

अपितु स्रष्टा बनाने के प्रयास मे निरत रहती। कुशाग्र बुद्धि के धनी आषाढ़भूति स्वल्प समय मे ही संगीत शास्त्र के पारदृश्वा और नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ बन गये। यह सब उनके आठो याम चारो ओर नाट्य एव सगीत के वातावरण का परिणाम था।

नाट्यशालाधिराज नटराज की अन्तर्दृष्टि सदा आषाढभूति की दैनन्दिनी पर लगी रहती। एक दिन जब उन्होने देखा कि उनके जामाता की मनोभूमि मे एक सच्चे नाटककार के बीज अकुरित हो चुके हैं, तो उन्होने आषाढभूति को अपने कक्ष मे बुलवाया और अपने अन्तर्हृद के स्नेह सागर को उन पर उडेलते हुए कहा—

"वत्स! तुम्हे पाकर मैं कृतकृत्य हो गया हू। मुझ अपुत्र को आपने सपुत्र बना मुझे निश्चिन्त कर दिया है। मैं पर्याप्त रूपेण वयोवृद्ध होता जा रहा हू, अपना घर बार परिजन परिवार सब कुछ तुम्हे सम्भलाकर अपना शेष जीवन ईश्वराराधन मे व्यतीत करना चाहता हू। कार्यभार से निवृत्त होने से पूर्व मैं चाहता हू कि तुम्हे न केवल मगधेश से ही अपितु आर्यधरा के अन्यान्य सभी राज्यो के नरेश्वरो से परिचित करा दू। कल प्रात काल ,तुम्हे मेरे साथ मगधेश्वर की राज सभा में चलना है। राज सभा मे किस परिधान मे उपस्थित होना है यह सब तुम्हारे परिचारक जानते हैं। मैंने उन्हे निर्देश दे दिया है कि वे सब तुम्हे उन परिधानो से प्रात अर्धपौरुषी के

अवसान से पूर्व ही सुसज्जित व समलंकृत कर दें।"

"आपके आदेश का अक्षरशः पालन किया जायेगा" यह कहते हुए आषाढ़भूति ने मगधेश की राजसभा में उपस्थित होने की सहमति प्रदान की।

दूसरे दिन सूर्योदय से पूर्व आषाढ़भूति के परिचारक एवं परिचारिकाओं नें तैलाभ्यङ्गादि से मर्दनानंतर एवं मज्जनोपरांत उन्हें राजसभा में उपस्थित होने योग्य बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित किया। स्वयं नाट्य-शालाध्यक्ष ने परिधान आदि का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने के उपरान्त आषाढ़भूति की पीठ को अपने दाहिने हाथ से थपथपाते हुए कहा–

"अतीव सुन्दर! नाट्यकला के सर्वश्रेष्ठ कलाकार का मैं अभिवादन करता हूं। मगधेश्वर और उनकी राजसभा के सदस्य आज अपने भावी महान् कलाकार को देखकर परम प्रमुदित होंगे।"

प्रातरशन करने के अनंतर श्वसुर और जामाता अतीव सुन्दर चपल चार अश्वों से वह्यमान रथ पर आरूढ़ हुए। सारथी के संकेत मात्र से चारों चपल अश्व वायु वेग से राजप्रासाद की ओर अग्रसर हुए। प्रशस्त राजपथ पर चतुष्पथों, श्रृंगाटकों को पीछे की ओर छोड़ता हुआ रथ नगाधिराज तुल्य गगनचुम्बी राजप्रासाद के सिंहद्वार में प्रविष्ट हुआ। समुचित स्थान पर रथ रुक गया।

नाट्यशालाध्यक्ष अपने जामाता के साथ रथ से उतरकर राज-सभा मे प्रविष्ट हुए और अपने लिये राजसभा मे सुनिश्चित आसन के पास ही दूसरे आसन की ओर सकेत करते हुए अपने जामाता को उस पर बैठने का निर्देश दिया तथा स्वय भी अपने आसन पर आसीन हुए। कुछ ही क्षणो के अनन्तर गगनवेधी जय-घोष के बीच मगधसम्राट् ने अपने मंत्रिमण्डल, महामात्यादि सदस्यो, अगरक्षको, सेनाध्यक्षो आदि के साथ राजसभा मे प्रवेश किया। जयघोष के साथ ही राजसभा के सभी सदस्यो ने साजलि शीष झुका मगधेश्वर को प्रणाम किया। सबके अपने अपने आसनो पर अवस्थित हो जाने के अनतर मगधाधीश ने अपने प्रजाजनो एव समष्टि के लिए कल्याणकारी कार्यो पर सबंधित मंत्रियो एव विभागाध्यक्षो के साथ विचार विनिमय किया। प्रजा के प्रति मगधेश के इस आन्तरिक अगाध स्नेह को देखकर राज्य सभा के सभी सदस्य हर्ष विभोर हो उठे। मगध सम्राट् ने नाट्यशालाध्यक्ष की ओर दृष्टि-निपात करते हुए कहा–

"क्या आज अपने उत्तराधिकारी को साथ लेकर मगध की नाट्यशाला के सूत्रधार मगध की राजसभा मे उपस्थित हुए हैं?"

नाट्यशालाध्यक्ष ने करबद्ध एव नतमस्तक हो विनय भरे स्वर मे कहा– "हा, मगधेश्वर! आज मैं अपने

प्राणाधिक प्रिय जामाता को आपकी सेवा में लाया हूं।"

मगधेश्वर ने हर्ष भरे स्वर में कहा—"बड़ा भाग्यवान् है मगध की नाट्यशाला का यह महान् यशस्वी सूत्रधार, जिसे इस प्रकार का सौम्य, सुन्दर और तेजस्वी जामाता प्राप्त हुआ है।"

मगधेश ने आषाढ़भूति की ओर इंगित करते हुए कहा—"वत्स! क्या नाम है आपका? आकृति ही बता रही है कि अनेक विद्याओं में पारंगत एवं उच्च कोटि की कलाओं में आप निष्णात हैं।"

जिसे कुछ ही समय पूर्व मगधेश ने अपने आत्मीयों, परिजनों एवं पौरजनों के साथ नतमस्तक हो सभक्ति वंदन किया था, उसी आषाढ़भूति ने सांजलि शीष झुका मगधेश्वर को प्रणाम करते हुए कहा—

"स्वामिन्! सेवक को आषाढ़भूति के नाम से संबोधित करते हैं।"

मगधेश्वर ने पुनः—"सौम्य! हमने सुना है कि तुम अनेक अलौकिक अद्भुत गुणों के स्वामी हो। मेरे अन्तर्मन में एक अभिलाषा अनेक वर्षों से घर किये हुए है कि मै भारत देश के और इसके अन्यान्य मित्र देशों के राजाओं को मगध की नाट्यकला का चमत्कार दिखाकर मागधी कला की छाप संसार के महाराजाओं के हृदय पर अंकित कर दूं। हमारे ईक्ष्वाकु क्षत्रिय वंश के मूल पुरुष और आर्यधरा पर मानव संस्कृति के साथ कर्मभूमि के

आद्य प्रवर्तक भगवान् ऋषभदेव ने किस प्रकार भोग भूमि के अवोध लोगो को कर्मभूमि का पाठ पढ़ा असि, मसि, कृषि विषयक सभी कलाओ का परिज्ञान कराया। अव में अनुभव कर रहा हू कि मेरी उस आन्तरिक अभिलाषा के पूर्ण होने का स्वर्णिम अवसर समीप ही आ गया है। आप जैसे असाधारण कलाकार के सुयोग से मेरी वह चिरकाल से अन्तर्मन मे सजोयी हुई आकाक्षा पूर्ण होगी, इस वात का अव मुझे विश्वास हो गया है। अपनी इस आन्तरिक उत्कट अभिलाषा की पूर्ति हेतु, में आपसे परामर्श कर एक रूपरेखा निर्धारित करना चाहता हू। राज सभा के विसर्जन के अनन्तर इस सम्वन्ध मे नाट्यशालाध्यक्ष आदि के साथ वैठकर विचार विमर्श करूगा।"

आषाढभूति ने अपने श्रमण जीवन मे तपश्चरण के साथ-साथ सस्कृत प्राकृत आदि अनेक भाषाओ का और द्वादशागी का गहन अध्ययन भी किया था। इस प्रकार वाह्नाभ्यन्तर दोनो प्रकार के तप के प्रभाव से उन्हे छोटी वडी अनेक प्रकार की लव्धिया भी उपलव्ध हुई थी। इन सिद्धियो की सहायता से वे अनेक प्रकार के असभव समझे जाने वाले कार्यों को सहज ही निष्पन्न करने की क्षमता रखते थे। मगधेश्वर के इस प्रस्ताव से उनके अन्तर्मन मे भी कभी न वुझने वाली उत्कट लालसा उद्भूत हुई। वे अपनी उपलव्धियो अथवा सिद्धियो के वल पर सोचने

लगे कि भोग भूमि और कर्म भूमि के सन्धिकाल की आर्यधरा की दशा का चित्रण करने के अनंतर कर्मयुग के सूत्रधार, धर्म के आदि कर्ता तीनों नीतियों के प्रणेता, प्रथम राजा, प्रथम शिक्षक, धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों वर्गों की साधनाओं सभी प्रकार की विधाओं एवं कलाओं के आदि शिक्षक भगवान् आदि नाथ के परम पावन जीवन पर चिंतन एवं जन-जन के समक्ष चित्रण का इस से बढ़कर उन्हें और कोई सुयोग कभी प्राप्त नहीं हो सकता। वे नतमस्तक होकर विचार करने लगे कि उस स्वर्णिम सुयोग का पूर्णरूपेण लाभ उठाने में मैं किसी प्रकार की कोर-कसर नहीं रखूंगा। इस प्रकार मन में दृढ़ निश्चय कर आषाढ़भूति ने मन ही मन अपने भावी कार्यक्रम की रूपरेखा पर चिन्तन प्रारम्भ कर दिया।

मगधेश्वर के राज प्रासाद में कतिपय मास तक मगधेश्वर, नाट्यशालाध्यक्ष, महामात्य और आषाढ़-भूति आदि का पारस्परिक परामर्शपूर्ण विचार-विमर्श चलता रहा। सभी ने इस विचार-विमर्श में यही अनुभव किया कि इस विषय में आषाढ़भूति का चिंतन मनन और परामर्श ही सर्वाधिक प्रामाणिक, मननीय, करणीय और महत्वपूर्ण है। अन्ततोगत्वा एक महान् नाटक के मंचन का निश्चय किया गया, और इस विषय में सभी प्रकार की आवश्यक सामग्री एकत्र करने का निर्देश आषाढ़भूति को दिया गया। आषाढ़भूति ने अभिमंचित किये जाने

वाले ऋषभायण का प्रारूप लिखकर मगधेश के सम्मुख प्रस्तुत किया। उस प्रारूप को मगधेश और उनके मंत्रिमण्डल, विद्वन्मण्डल, और कलाकाराग्रणियो ने मुक्त कण्ठ से सराहा। आषाढ़भूति के परामर्शानुसार एक अति सुविशाल रगमच निर्मित करवाया गया, जिसमे सहस्रों सहस्र दर्शक एक साथ बैठकर स्पष्टरुपेण देख सुन सकते थे।

अभिनय हेतु विपुल महार्घ्य सामग्री अभिनवरूपेण आषाढ़भूति के परामर्शानुसार निर्मित एव एकत्रित की गई। अभिनय हेतु अनेक सर्वकला निष्णात् राजकुमारो एव किशोरो आदि का आषाढ़भूति ने चयन किया। सभी आवश्यक कार्यों के सम्पन्न हो जाने के अनतर आषाढभूति ने अभिनय करने वाले सभी पात्रो को ऋषभायण के अभिमचन की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। इस अभिनय की शिक्षा के परिणाम स्वरूप एक अदृष्टपूर्व गधर्वनगर का दृश्य राजगृह नगर के प्रान्त भाग मे प्रस्तुत होने लगा। विविध वाद्ययन्त्रो, सगीत की स्वरलहरियों, जात्यश्वो की हिनहिनाहट, मदोन्मत्त गजराजो की चिघाडों और रथो की घडघडाहट अहर्निश गुंजरित होने लगी। समय-समय पर आषाढभूति के आमत्रण पर मगधेश्वर अपने आत्मीयजनो अमात्यवर्ग एव नाट्यशाला के सूत्रधार के साथ रगमच मे उपस्थित हो आषाढभूति द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले पावन पुरुषो

के लोककल्याणकारी जीवनवृत्त के अंशों का निरीक्षण भी करते। सभी को निरीक्षणकाल में ऐसा अनुभव होता मानो वे किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा इस अवसर्पिणी काल के तृतीय आरक के अन्तिम भाग में उपस्थित कर दिये गये हों, और कर्म-भूमि के साथ-साथ सही अर्थ में मानव सभ्यता का श्री गणेश उनकी आंखों के समक्ष किया जा रहा हो।

अतीत का जो अद्भुत अंकन इस रंगमंच पर किया जा रहा है, उसे सहज स्वरूप में प्रदर्शित करना, आषाढ़भूति की लब्धियों एवं सर्वकला निष्णातता का ही परिणाम था, इस बात को मगधेश के साथ साथ सभी प्रत्यक्ष-दर्शियों ने आश्चर्याभिभूत मुद्रा में अभिव्यक्त किया।

अनेक मास तक आषाढ़भूति के तत्वावधान में रंगमंच पर ऋषभायण के प्रस्तुतीकरण विषयक प्रशिक्षण एवं अभिनय का कार्य अहर्निश प्रगति पर चलता रहा। आवश्यक प्रशिक्षण के सम्पन्न हो जाने के अनंतर आषाढ़भूति ने अपने श्वसुर के साथ मगधेश्वर की राज-सभा में उपस्थित हो मगधाधीश से निवेदन किया—"राज-राजेश्वर! आप श्री की इच्छा के अनुरूप सुरतरु ने विशाल रूप धारण कर लिया है। वह सुचारू रूप से पुष्पित पल्लवित हो जाने के अनंतर अब अमृतोपम सुमधुर फल देने के लिये समुद्यत है। इस संबंध में समय आदि जो भी निश्चित करना चाहें, वह

आप कर सकते हैं। ऋषभायण के रगमच पर प्रस्तुत करने के सभी कार्य हमारी ओर से सुचारु ढग से सम्पन्न हो चुके हैं। जहा तक ऋषभायण के अभिमचन का प्रश्न है, आप जब चाहेगे तभी प्रारभ होगा।"

मगधेश महान् कलाकार आषाढभूति के विनम्र निवेदन को सुनकर हर्षविभोर हो उठे। उन्हे ऐसा अनुभव हुआ मानो उनका यह मानव जीवन सफल हो गया है। अपनी राजसभा के सदस्यो से परामर्श के अनतर मगधेश ने ऋषभायण के मचन का समय सुनिश्चित कर, अपने विशाल साम्राज्य के सुदूरस्थ नगरो, एव ग्रामो मे निवास करने वाले प्रजाजनो के साथ-साथ अपने सभी सम्बन्धित राजा-महाराजाओ, पडोसी राजाओ, आर्यावर्त के उच्च कोटि के कलाकारो, विद्वानो, श्रेष्ठिवरो, और अपने अनेक विदेशी मित्र महाराजाओ को भी ऋषभायण के अभूतपूर्व अभिमचन को देखने के लिये आमत्रित किया। आषाढभूति ऋषभायण के अभिमचन की तिथियो का निश्चय हो जाने के अनतर तो अत्यधिक व्यस्त रहने लगे। न उन्हे रात का ध्यान रहा और न दिन का। केवल अभिमचन को उत्कृष्ट कोटि का, अत्यद्भुत, अलौकिक एव चमत्कार-पूर्ण बनाने के चितन, मनन, अभिमचन एव शिक्षण सबधी कार्यो मे ही वे डूबे से रहते। उन्हे अनेक बार अनेक राते रगशाला मे ही व्यतीत करनी पडती थी। एक

दिन वह अपनी पत्नियों से चार पांच दिन तक रंगशाला में व्यस्त रहने और घर न लौटने की बात कहकर अपने भव्य प्रासाद से प्रस्थित हुए।

मगध जैसे एक सुविशाल साम्राज्य के नाट्यशास्त्र निष्णात महान् राजकीय कलाकार के घर में लक्ष्मी और भोगोपभोग की सामग्रियों की कमी की कल्पना तक नहीं की जा सकती। ऐहिक सुखोपभोगों की सामग्रियों का वहां अम्बार लगा रहता था। उसके आवास में एक-एक कण में लक्ष्मी के नूपुरों की झण्कार प्रतिध्वनित होती थी। इस सबके उपरान्त जब से आषाढ़भूति ने ऋषभायण के अभिमंचन के कतिपय अंश मगध-सम्राट् को दिखाने प्रारंभ किये, तब से तो राजकीय नाट्यशाला के सूत्रधार के घर पर स्वर्ण, मणि, माणिक्य हीरकादि की एक प्रकार से अनवरत वृष्टि सी होनी प्रारंभ हो गई थी। इस घर का प्रत्येक सदस्य इस वसुधारा की वृष्टि से पुलकित एवं प्रफुल्लित था। नीतिकारों ने अति को अनर्थकारी बताने की दृष्टि से ही संभवतः कहा है—"अति सर्वत्र वर्जयेत्।" लक्ष्मी की अत्यधिक कृपा भी कभी-कभी अनर्थकारी सिद्ध हो जाती है।

अपने प्रियतम के चार पांच दिन तक घर न लौटने की बात सुनकर आषाढ़भूति की दोनों पत्नियों के मन में मधु सेवन की ललक जाग्रत हो उठी। रात्रि के समय उन्होंने विशिष्ट प्रकार के अतिस्वादिष्ट आसव का पान किया।

आषाढभूति के इस भवन मे आगमन के पश्चात् बड़े लंबे समय से मिले आसव-सेवन के इस अवसर पर उन्होने जीभर आनद लूटने का निश्चय किया। जिस समय दोनो बहनो के मादक मधु के सेवन का क्रम चल रहा था, ठीक उसी समय आषाढभूति सहसा किसी कारणवशात् वहाँ आए। सगीत की सुधा-सुमधुर स्वर-लहरियो के साथ-साथ मादक मधु के दौर मे आत्मविस्मृत पत्नियो को देखकर आषाढभूति कुछ क्षण अवाक् खडे रहे। उसके अन्तर मे प्रगाढ निद्राधीन वैराग्य जागृत हुआ और वे तीव्र गति से अपनी पत्नियो के समक्ष जा खडे हुए।

अपने पति के इस अप्रत्याशित आगमन को देख दोनो बहिने शोक के पाताल कूप मे गिरने के समान दु ख का अनुभव करती हुई चित्रलिखित-सी रह गईं। मादक मधु का प्रभाव तत्क्षण कपूर की तरह उड गया। अपनी मूर्खता पर उन्हे घोर पश्चात्ताप हुआ, और पति के मुख पर उभरते हुए विरक्ति के रग को देखकर तो उन्हे ऐसा अनुभव हुआ मानो उनका सर्वस्व लूटा जा रहा है अथवा उनके प्राणो को भयकर विषधारी डस गया है।

घनरव गभीर सुदृढस्वर मे आषाढभूति ने कहा—"अब अपने सयोग की अवधि समाप्त हुई। आसव-सेवन न करने की प्रतिज्ञा को भग कर तुम दोनो ने सत्पथ से भटके हुए पथिक, मुझे पुन सुपथ पर आरूढ करने का उपकार किया है।"

आषाढ़भूति के मुख से निसृत शब्दों के एक-एक अक्षर ने दोनों बहिनों के रोम-रोम में प्रलयाग्नि तुल्य ज्वालाएं प्रज्वलित कर दीं। स्वर्ग-तुल्य संसार के शून्य होने की कल्पना ने उन दोनों के अन्तर को प्रलयानिल के झोंके के समान झकझोर दिया। हठात् वे दोनों वायुवेग से टूटी हुई चम्पक वृक्ष की शाखाओं के समान आषाढ़भूति के चरणों पर गिर पड़ीं। जिस प्रकार जंजीर में किसी व्यक्ति के पैरों को बांध दिया जाता है, उसी प्रकार उन दोनों बहिनों ने अपने बाहुपाशों में आषाढ़भूति के पादयुगल को आबद्ध कर लिया। अपने मस्तक को अपने पति के चरणों पर रखकर वे फफक-फफक कर रोने लगीं।

आषाढ़भूति ने अपने आपको उन दोनों से मुक्त करने का प्रयास करते हुए कहा—"मैंने अपने गुरु के परामर्शानुसार अपना अटल निश्चय प्रथम मिलन के समय ही बता दिया था कि यदि इस घर में अभक्ष्यभोजन एवं मधु सेवन होगा तो मैं इस घर का परित्याग कर दूंगा। तुमने मेरे इस कथन को स्वीकार करते हुए कभी मद्य सेवन न करने की प्रतिज्ञा भी की थी। अपनी प्रतिज्ञा को भंग कर परोक्ष रूप में तुमने मुझे इस घर से सदा सर्वदा के लिए चले जाने के लिए बाध्य कर पुनः विरक्ति के पथ का पथिक बना दिया है।"

इस पर दोनों बहिनों ने आषाढ़भूति के चरणों को

दुगुनी शक्ति से जकडते हुए कहा—

"नही, नही नाथ! यह इस जन्म मे तो क्या, जन्मजन्मान्तरो मे भी सभव नही हो सकेगा। हमारा अपराध क्षमा करो। हम स्वय इस अपराध की अग्नि मे भस्मसात् हो रही हैं, अन्तर्मन से पश्चात्ताप कर रही हैं। अब जीवन मे कभी इस प्रकार की त्रुटि नही होगी।" उन दोनो बहिनो ने अश्रुओ की वर्षा से आषाढ़भूति के दोनो चरणो को पुन पुन प्रक्षालित किया।

एक ओर तो करुण-रस की प्रतिमूर्ति महिलाये और उस पर विशेषता कि अपने समय के एक उच्च कोटि के नाट्य-कला-कुशल नाटककार की आत्मजाये। इस प्रकार की स्थिति मे उनका करुण विलाप कितना प्रभावकारी रहा होगा, इसका अनुमान लगाना बडा कठिन है। अस्तु, उन दोनो युवतियो के अश्रुप्रवाहपूर्ण विलाप ने आषाढभूति को उनके निश्चय से विचलित कर दिया। उनके अन्तर्मन मे उद्भूत वैराग्य अश्रुओ की बाढ मे बह गया। आषाढभूति ने दृढ सकल्प से स्खलना की ओर अग्रसर होते हुए कहा—"यद्यपि तुमने वचन भग कर मेरे विश्वास को भयकर आघात पहुचाया है तथापि मैं यह अनुभव कर रहा हू कि पश्चात्ताप की अग्नि मे तुमने अपने उस अपराध को जला दिया है, अत मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर पुन इस घर मे रहने के लिये सहमत हो सकता हू। परतु फिर कभी यदि इस प्रकार की

स्थिति उत्पन्न हुई तो मैं इस घर के साथ साथ तुम सभी का जीवन पर्यन्त परित्याग कर दूंगा और पुनः इस घर की ओर नहीं देखूंगा।"

दोनों बहिनों ने अश्रुपूरित युगल लोचनों से आषाढ़भूति की ओर निहारते हुये कहा– "नाथ! आपकी अनुचरियां भविष्य में कभी इस त्रुटि की पुनरावृत्ति नहीं करेंगीं।" आषाढ़भूति ने सान्त्वना भरे स्वर में कहा– "उठो! अपने आवश्यक कार्य में व्यस्त हो जाओ।" आषाढ़भूति के इस आश्वासन से वे दोनों बहिनें आश्वस्त हुईं और उन दोनों बहिनों ने ठीक उसी प्रकार अतिशय आनंद का अनुभव किया, जिस प्रकार कि मध्याह्न की खुली धूप से उठा कर विशाल जलाशय में छोड़ी गयीं मछलियां। आषाढ़भूति का दाम्पत्य जीवन पूर्व की भांति ही राग रंग एवं ऐहिक भोगोपभोग में व्यतीत होने लगा। आषाढ़भूति पुनः पूर्ण मनोयोग से ऋषभायण के अभिमंचन में व्यस्त हो गये।

रंगशालाध्यक्ष के हर्ष का पारावार न रहा। उसके जामाता की यशोकीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त हो रही थी। जहां तक धन का प्रश्न है, जामाता के आगमन से पूर्व भी उस पर लक्ष्मी की पूर्ण कृपा थी। किन्तु अब तो घर में कृष्णा कावेरी दशों दिशाओं से स्वर्ण उंडेल रही थीं। ऋषभायण के अभिमंचन में प्रत्येक पात्र के न केवल अभिनय को ही अपितु प्रत्येक भाव भंगिमा को तन्मयता

पूर्ण एकाग्रता के साथ बडी ही सूक्ष्म दृष्टि से रग-शालाध्यक्ष ने देखा, प्रत्येक शब्द के प्रभाव को बडी सावधानी के साथ सुना था। ऋषभायण के मचन मे उसके जामाता ने नाट्यकलाधिष्ठात्री देवी को मानो स्वर्ग से साकार रूप में उतार कर मृत्यु लोक के मानवो के समक्ष प्रस्तुत कर दिया।

मगध जैसे विशाल साम्राज्य का लोकमान्य महान् कलाकार ऋषभायण के प्रदर्शन मे अपने जामाता की अलौकिक लब्धियों के प्रभाव से अद्भुत् चमत्कार-पूर्ण अभिनय को देखकर अनेक बार यह अभिमत व्यक्त करता था—"उसने आज तक इस प्रकार का उच्च कोटि का अभिनय कही नही देखा। यह वस्तुत. मानव के लिये नितान्त असभव कृत्य ही समझा जाता रहा है। उस असभव को सभव बनाकर मेरे जामाता ने असभव के अभेद्य दुर्ग को तोडकर असभव को सभव ही नही अपितु सहज-सुकर कर दिया है।"

ज्यो ज्यो ऋषभायण के मचन का समय सन्निकट चला आ रहा था, त्यों-त्यो मगध साम्राज्य के नाटककार-नाट्यशालाध्यक्ष का हर्ष महोच्चगगन की उच्चतम ऊचाई को चूमने लगा। वह कल्पना कर रहाथा किन केवल मगध ही अपितु आर्यधरा के इस छोर से उस छोर तक के ग्रामो एव नगरो के सहस्रो नागरिक, सम्पूर्ण भारत और समुद्र पार के विभिन्न देशो के बडे-बडे कलामर्मज्ञ

तथा परम समृद्धिशाली राजाधिराज, धनकुबेर नगर-श्रेष्ठी, राष्ट्र-श्रेष्ठी आदि ऋषभायण को देखने के लिये इतनी संख्या में उपस्थित होंगे कि ऋषभायण के मंचन पर मुग्ध हो जिस समय मणि, माणिक्य, स्वर्ण, रत्न एवं रत्नजटित अलंकाराभरणों की मेरे जामाता पर वृष्टि प्रारंभ करेंगे, उस समय मेरे समग्र कोषागार और धनधान्य के भंडार तक स्वर्णरत्नादि से परिपूर्ण हो जायेंगे। मणि-माणिक्य, मौक्तिकादि के सुविशाल ढेरों को मुझे खुले आंगन में ही रखना पड़ेगा। अहो! मैं आज पृथ्वी का सबसे बड़ा भाग्यशाली मानव हूं। वस्तुतः मेरी पुत्रियां बड़ी ही सौभाग्यशालिनी हैं। अब तो वे विपुल धन-वैभव-सम्पन्न वर्चस्वशालिनी और ऐश्वर्यशालिनी रमणियां हो जायेंगी।''

आषाढ़भूति ने बड़े लंबे समय तक नाट्यवस्तु संशोधन, परिवर्धन आदि के अनंतर अन्ततोगत्वा ऋषभायण को अंतिम रूप अर्थात् निर्णायक स्वरूप प्रदान करते हुए इसे अनेक विभागों अथवा खण्डों में विभक्त किया। ऋषभायण के इस अन्तिम स्वरूप और अनेक दृश्यों में विभाजन की मगध सम्राट् ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए अपने हर्षोद्गार अभिव्यक्त किये—''यह तो हमारा, हमारे प्रजाजनों एवं विभिन्न प्रान्तों, देशों एवं द्वीप-द्वीपान्तरों के अधीश्वरों अथवा अधिवासियों के सौभाग्य की बात है कि हम प्रवर्तमान

अवसर्पिणी काल के शुभारभ से लेकर प्रथम चक्रवर्ती महाराज भरतेश्वर द्वारा की गई षट्खण्ड विजय और केवल ज्ञान की प्राप्ति तक का विवरण प्रत्यक्ष वत् देख सकेगे।

ज्यो ज्यो युगादि की एक महान् सत्यकथा के नाट्यरूपान्तर और अभिनय से प्रदर्शित करने का समय सन्निकट आता गया, त्यो त्यो न केवल भरत क्षेत्र से ही अपितु विदेशो से भी अनेक राजाओ, कलाविदो, सामन्तो एव श्रीमन्तो आदि के अपने-अपने विशाल परिकर परिवार आदि के साथ इस अवसर पर राजगृह नगर मे उपस्थित होने के सदेश, आवेदन, प्रार्थना पत्रादि आने लगे।

प्रथम अभिनय के देखने से ही मगध सम्राट् को यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि दूतो, सार्थवाहो, पर्यटको एव व्यापारियो के माध्यम से इस ऋषभायन की प्रसिद्धि देश-विदेश मे यत्र-तत्र-सर्वत्र हो जायेगी और इसके परिणामस्वरूप इसके दर्शको की जनमेदिनी न केवल सुविशाल अपितु अपरिमित भी होगी। इसी कारण मगधेश्वर ने मगध साम्राज्य के निर्माणाध्यक्ष को अति विशाल सख्या मे उपस्थित होने वाले अतिथियों के आवास, आतिथ्य-आदर सत्कार की व्यवस्था करने के आदेश-निर्देश उन्हे निमंत्रित किये जाने से पूर्व ही प्रदान कर दिये थे।

मगधेश्वर के एतद् विषयक आदेशों का बड़ी ही तत्परता के साथ निर्माणाध्यक्ष ने परिपालन किया. और कुछ ही मास की अवधि में ऋषभायण को देखने हेतु आने वालों के आवासार्थ इतनी प्रचुर संख्या में आवास निर्मित कर दिये गये कि राजगृह नगर के चारों ओर अनेक उपनगर और अनेक सन्निवेश सुशोभित होने लगे। इस महान् आदर्श नाटक के मंचन की तिथियों से कतिपय दिनों पूर्व ही दिशा-विदिशाओं से, देश-विदेशों के दर्शकगण ऋषभायण के दर्शनार्थ सुविशाल संख्या में समुपस्थित होने लगे। अन्ततोगत्वा चिरप्रतीक्षित तिथियां जन-मानस में आनंद, आमोद, प्रमोद, कौतूहल आदि की उत्ताल तरंगे तरंगित करती हुई उपस्थित हुईं।

पूर्वनिर्धारित शुभदिन व शुभ मुहूर्त में ऋषभायण के मंचन का शुभारंभ किया गया। सर्व प्रथम ऋषभायण के सूत्रधार आषाढ़भूति ने आठ किशोरों और नौ किशोरियों के साथ विविध वाद्य यंत्रों की सुमधुर ध्वनि के साथ निम्नलिखित मंगल पाठ किया—

मंगलाचरण

दिनेशवंशनन्दनं जिनेशवंशमण्डनम्,
प्रवर्तमानमानवीय-संस्कृतेः प्रवर्तकम्।
युगादिमं जनेश्वरं मुदादिमं जिनेश्वरम्,
नमामि नाभिनन्दनं मरु—श्रियः प्रियात्मजम्।।१।।

सहार्थराजधर्मनीति-तिसृणा विधायकम्,
समस्त-लौकिकी कला-क्रिया-कलाप-शिक्षणे।
युगादि शिक्षकं स्वभु जगद् गुरु जगद्प्रिय,
नमामि नाभिनन्दन मरु-श्रिय प्रियात्मजम्।।२।।

तिरोहिते तु भोगिके युगे यथेप्सित-प्रदा —
द्रुमा हि कल्प सज्ञका यदा लय गता भुव।
तदैव कर्म-भूमिक युगं ससर्ज यो हि तम्,
नमामि नाभिनन्दन मरुश्रिय प्रियात्मजम्।।३।।

सुसस्कृतान् सुशिक्षितान् सुवैभवै सुरोपमान्,
विधाय युग्मसभवान् प्रजाजनान् जनेश्वर।
जगद्धिताय चात्मन गृहीतवान् मुनिव्रतम्,
नमामि नाभिनन्दन मरुश्रिय प्रियात्मजम्।।४।।

तपोऽभितप्तमुत्तम त्रयोदशार्द्धमासिकम्
जनैर्न पूर्वत श्रुत सुघोर-रोमहर्षणम्।
सदिक्षुसस्कृतै रसै तपोऽभिपारण कृतम्,
नमामि नाभिनन्दन मरुश्रिय प्रियात्मजम्।।५।।

धराधरेन्द्र मेरुवत् त्वकम्पनो सुनिश्चल,
परीषहैर्न चालित कदापि यो दमीश्वर।
तमर्षभ सुसागरैर्गभीरमुत्तमोत्तमम्,
नमामि नाभिनन्दन मरुश्रिय प्रियात्मजम्।।६।।

सुधौत-घाति-कर्म-पंक-कल्मषं कृपाकरम्,
भवार्णवि निमज्जतां भवाब्धिपोत सन्निभम्।
मुदार्षभं सुरासुरेन्द्र-मानवेन्द्र वन्दितम्,
नमामि नाभिनन्दनं मरुश्रियः प्रियात्मजम्।।७।।

भवार्णवात् सुभव्यप्राणि-तारणैक-सक्षमम्,
समग्र भूत संघ मंगलाय वै सदोद्यतम्।
प्रवर्तितं सुधर्म-तीर्थमुत्तमं हि येन तम्
नमामि नाभिनन्दनं मरुश्रियः प्रियात्मजम्।।८।।

मंगल पाठ ने भक्ति के सुधारस से ओतप्रोत प्रवाह की सुरसरिता प्रवाहित कर दी। सुमधुर वाद्य वृन्दों की सधी हुई ताल-लय के साथ उद्‌गाताओं के कण्ठ से नमन की भाव भंगिमाओं के साथ निःसृत रागिनियों पर आबालवृद्ध नर-नारी श्रोता वृन्द झूम उठे। रंगमंच की शोभा वाणी और लेखनी के द्वारा अभिव्यक्त नहीं की जा सकती। ऐसा प्रतीत होता था मानो आगमिक साहित्य में वर्णित सुरलोक की सौधर्मसभा ही साकार हो धरातल पर उतर आई हो। रंगशाला का वातावरण तन-मन-मस्तिष्क और हृदय को अनिर्वचनीय आनंद के अदृष्टपूर्व-अननुभूत झूले में झुला रहा था।

दर्शक हृदय थामे और अपने श्वासोच्छ्‌वास पर अनुशासन करते हुए अपलक दृष्टि से रंगमंच की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। सहसा सुमधुर ध्वनि के साथ रंगमंच का पट-परिवर्तन हुआ, दर्शकों के आश्चर्य

मिश्रित हर्ष का पारावार न रहा। सूत्रधार ने सुमधुर गभीर घोष करते हुए कहा—

''अव प्रवर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम आरक कालीन भरत क्षेत्र और भरत क्षेत्र के निवासियो की स्थिति दर्शायी जाएगी। सूत्रधार के उद्घोष के साथ ही एक अतीव मनोरम सुन्दर दृश्य दर्शको के समक्ष प्रकट हुआ। सव ओर धरातल और क्षितिज पर स्वर्णिम प्रकाश, सम्पूर्ण क्षितिमण्डल सुर तरुओ-कल्पवृक्षो से सुशोभित था। नयनाभिराम-हृदयहारिणी हरियाली पर दिव्य आकृति वाले अतीव सुन्दर यौगलिक नर-नारियो के युगल यत्र-तत्र अप्रतिहत गति से विचरण करते हुए अपने आप मे पूर्ण रूप से सन्तुष्ट व प्रमुदित दृष्टिगोचर हो रहे थे। सभी युगल पूर्णत प्रसन्न थे, सव के मुखकमल फुल्लारविंद तुल्य थे। शोक, चिन्ता, जरा आदि का उनके किसी भी अगोपाग पर लवलेश भी दृष्टिगोचर नही होता था। न कही सूर्य दृष्टिगोचर होता था, न कही चन्द्र ही। किन्तु सर्वत्र सदा स्वर्णिम प्रकाश धरातल पर, क्षितिज पर, सभी समय समान रूप से सुशोभित हो रहा था। पृथ्वी का कण-कण और प्रत्येक प्रस्तर खण्ड महार्घ्य चन्द्रकात मणि के समान चमत्कार पूर्ण था। मन्द मन्द सुगंधित एव शीतल मलयानल समस्त प्राणिवर्ग के मन को प्रमुदित कर रहा था।

यौगलिको का युगल जहा कही विचरण करता ज्योही

दृष्टिगोचर होता त्यों ही सम्पूर्ण वातावरण अनिर्वचनीय अतीव मनोमुग्ध कारिणी सुगंधियों से गमक उठता। जहां-जहां सुदूर तक दृष्टि जाती थी, सर्वत्र 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' के दर्शन होते थे। सर्वतः सब कुछ शान्त, सुमधुर, सम्मोहक और मादक तथा पांचों कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों के लिये अमनोज्ञता का एकान्ततः अभाव।

इस अतिशय आनन्द प्रदायी दृश्य को देखकर दर्शक आत्मविस्मृत हो किसी दूसरी ही सृष्टि में विचरण करने लगे। उन्हें अनुभव होने लगा मानो साक्षात् प्रथम आरक ही उनके समक्ष उपस्थित हुआ है।

यौगलिकों को उनके अन्तर में उत्पन्न होने वाली इच्छा के साथ ही कल्पवृक्षों से तत्काल सब कुछ पर्याप्तरुपेण बिना मांगे ही मिल जाता। अभाव व अभियोग कहीं किंचित् मात्र भी नहीं। सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट कृति मानव की हृत्तंत्री के तार तब झंकृत होते हैं जब कि मस्तिष्क में इष्ट-वियोग व अनिष्ट-योग के परिणामस्वरूप किसी प्रकार का विकार उत्पन्न होता है। वस्तुतः इष्ट-वियोग व अनिष्ट-योग तथा अभाव एवं अभियोग के परिणाम स्वरूप ही मस्तिष्क में संघर्ष का जन्म होता है। संघर्ष की ऊष्मा के उग्र रूप धारण कर लेने पर ही चिंता, शोक, रूचि, अरुचि, काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेषादि की उत्पत्ति होती है। किन्तु संघर्ष की ऊष्मा के नितान्त अभाव के परिणाम स्वरूप यौगलिक काल में रोग, शोक, व्याधि, चिन्ता, ईर्ष्या

द्वेषादि का कही अस्तित्व तक नही था। मन, मस्तिष्क और हृदय मे-अभाव अभियोग-जन्य सघर्ष की ऊष्मा के एक रूप से अभाव के परिणाम स्वरूप यौगलिको के मुखमण्डल पर अगाध शाति, अनिर्वचनीय तृप्ति और उच्चकोटि की सौम्यता का अखड-अकटक साम्राज्य साकार सा दृष्टिगोचर हो रहा था। प्रथम आरक कालीन भारत भूमि की इस प्रकार की स्थिति के विषय मे ऋषि, मुनियो के मुखारविंद से व आगमिक उपदेशो के माध्यम से जो कुछ सुना था, उसे प्रत्यक्ष की भाँति देखकर दर्शको ने असीम आनन्द का अनुभव किया, जिसे वाणी अथवा लेखनी से अभिव्यक्त करना सभव नही।

सूत्रधार ने इस अति कमनीय सुख की पूर्ण अवस्था पर प्रकाश डालते हुए गभीर स्वर मे विवेचन प्रस्तुत किया—"प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के तृतीय आरक की परिसमाप्ति के अन्तिम भाग मे इस अवसर्पिणी काल के आदि राजा, आदि गुरु, तीनो प्रकार की नीतियों के आदि प्रवर्तक और धर्मतीर्थ के आदिकर्ता, भगवान् ऋषभदेव अन्तिम कुलकर नाभिराज की सहधर्मिणी मरुदेवी की कुक्षि से आर्यधरा पर अवतरित हुए हैं। यह जो दृश्य उपस्थित किया गया है वह इस अवसर्पिणी काल के सुखमा-सुखम नामक 4 कोटाकोटि सागरोपम स्थिति वाले प्रथम आरक का है। इस आरक मे मानव सर्वथा सर्वदा सभी समय प्रगाढसुख का अनुभव करता है।

नितान्त सुखातिरेक में वह पूर्णतः आनंदमग्न एवं आत्मविस्मृत रहता है। अब तीन कोटा-कोटी सागरोपम स्थिति वाले सुखम नामक द्वितीय आरक की स्थिति का दिग्दर्शन आपको कराया जा रहा है।"

रंगमंच पर पट परिवर्तन हुआ और द्वितीय आरक के समय की प्राकृतिक, मानवीय (मानसिक एवं शारीरिक) स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया। इस द्वितीय आरक में प्रथम आरक के प्राकृतिक सौन्दर्य, पृथ्वी के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में तथा मानव देह के संहनन, संस्थान, रूप तथा कल्पवृक्षों के गुणों एवं संख्याओं आदि में भी शनैः शनैः ह्रास का क्रम चलता रहा। द्वितीय आरक की स्थिति का अभिनय एवं दृश्य रंगमंच के माध्यम से दिग्दर्शन कराने के अनंतर आषाढ़भूति ने तृतीय आरककालीन भरतक्षेत्र के आर्यावर्त और उसके निवासियों की आनंद से ओत प्रोत एवं सर्वविध सौख्य से सम्पन्न स्थिति का दिग्दर्शन कराया। यद्यपि आगमिक उल्लेखानुसार अवसर्पिणी काल में पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति के गुणों में अर्थात् वर्ण, गंध, रस, रूप स्पर्श में तीव्र गति से क्रमशः ह्रास होता रहता है—तथापि दस कोटाकोटि सागरोपम जैसी अतीव सुदीर्घ अवधि के अवसर्पिणी काल में इस प्रकार का ह्रास अगाध सागर की अमित जल राशि में से कोटि-कोटि घट प्रतिक्षण उलीचे जाने के समान सुदीर्घावधि तक भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर नहीं होता। इस

अतीव सूक्ष्म तथ्य को रगमच पर अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया गया, उससे सभी दर्शकों को प्रथम आरक से लेकर तृतीय आरक की अन्तिम अवधि तक का अनुक्रमिक ह्रास स्पष्टत दृष्टिगोचर एव अनुभव गम्य सा प्रतीत होता रहा।

तृतीय आरक की परिसमाप्ति मे जिस समय पल्योपम का आठवा भाग अवशिष्ट रह गया था, उस समय इस ह्रास का आभास मानव को स्पष्टत होने लगा। कुन्दन की कमनीय कान्ति से भी कोटि कोटिश अधिक हृदयहारी सार्वत्रिक सर्वव्यापी प्रकाश के क्रमिक ह्रास के परिणाम स्वरूप एक दिन गगन मण्डल मे अग्नि के प्रज्वलित गोले के समान सहस्र रश्मि को देखकर सबने कहा—"यह जाज्वल्यमान गोलक कैसा? कही हम पर तो आकर नही गिर जायेगा?" इस प्रकार एक ऊष्मा सी योगलिको के मस्तिष्क मे उत्पन्न हुई। उनकी हृदय तंत्रियो के तार झकृत हुए। वे लोग प्रथम तो कुछ द्रुत गति से इधर उधर चलने और तदनतर दिनमणि के मध्याकाश की ओर अग्रसर होने के साथ साथ स्पष्ट दृष्टिगोचर होने पर वे इतस्तत भागने और कल्पवृक्ष की ओट मे छिपने लगे। यह उनके मस्तिष्क मे ऊष्मा की प्रथम उत्पत्ति का असर था। फिर तो सूर्य के अस्ताचल की ओट मे होने के अनतर असीम आकाश मे क्रमश चन्द्र और तारामण्डल को देख यौगलिक काल के वे मानव इधर-उधर भागने लगे।

जहां समस्या की उत्पत्ति होती है, वहां उसके समाधान का भी समय देर अबेर अवश्य ही आता है। जिस प्रकार अंधकार पूर्ण रात्रि के अनंतर भुवन भास्कर के प्रकाश से भास्वर दिन। उन यौगलिकों में से ही एक महामानव यौगलिक पुरुष ने उन सब भयभीतों को अभय-निर्भय बनाते हुए गहन गंभीर स्वर में कहा–"हे यौगलिको! यह कालक्रमानुगत अवश्यंभावी प्राकृतिक परिवर्तन है। किसी को भयभीत होनें, चिंता करने, अथवा इधर-उधर भागने की आवश्यकता नहीं। सर्वप्रथम जो तुम्हें गगन मण्डल में देदीप्यमान गतिशील गोलक दृष्टिगत हुआ, वह सूर्य था। वह प्रतिदिन सुनिश्चित समय पर उदित एवं अस्त होता रहेगा। ज्यों ज्यों काल व्यतीत होगा त्यों त्यों इसका प्रकाश उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा। देखो! मैं तुम लोगों के सम्मुख यहां खडा हूं। देखो आकाश मण्डल में चन्द्र अपने स्थान पर स्थित है। जिस प्रकार मेरे ऊपर एक भी तारा नहीं गिरा ठीक उसी प्रकार यह न तुम पर गिरेगा और न किसी अन्य पर। इस विशिष्ट एवं प्रज्ञा के धनी व्यक्ति की बात श्रवण कर लोग आश्वस्त हुए, और किसी प्रकार की आशंका अथवा भय-प्रद स्थिति में उस बुद्धिशाली मानव के निर्देशानुसार व्यवहार करने लगे। सुदीर्घ अन्तराल के अनन्तर क्रमशः द्रव्य, गुण, पर्याय, वर्ण, गंध, रूप, स्पर्श के क्रमिक ह्रास के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती गईं और उन समस्याओं का

विशिष्ट व्यक्तित्व एव वुद्धिवल सम्पन्न व्यक्तियो ने समय पर समाधान भी किया।

इस प्रकार भोली अनभिज्ञ मानवता को भय की आशकाओ से विनिर्मुक्त करने वाले महापुरुषो को कुलकरो के नाम से अभिहित किया गया। इस प्रकार के चौदह कुलकरो के अनतर पन्द्रहवें कुलकर नाभि राजा हुए। इन सभी कुलकरों के काल मे युग भोग प्रधान रहा।

अवसर्पिणी काल के ह्रासोन्मुखी प्रभाव के परिणामत शनै शनै उच्च कोटि के कल्पवृक्षो का भी क्रमश लोप होता गया और अन्ततो-गत्वा जीवनोपयोगी सामग्री प्रदान कर यौगलिको की जठराग्नि को शात करने वाले कल्पवृक्षो की सख्या भी न्यूनातिन्यून होने लगी। अभाव ओर अभियोग ही वस्तुत सघर्ष के जनक हैं।

स्वल्प मात्रा मे अवशिष्ट रहे कल्पवृक्षो से जठराग्नि को शात करने वाली सामग्री जब यौगलिको को आवश्यकता से अधिक कम मात्रा मे प्राप्त होने लगी त्यो त्यो यौगलिको के मस्तिष्क में ऊष्मा और ऊष्मा के साथ-साथ विकारो की उत्पत्ति उत्तरोत्तर बढती ही गई। मस्तिष्क मे उत्पन्न इस प्रकार के ऊष्मापूर्ण विकारों के परिणाम स्वरूप अवसर्पिणी काल के प्रथम आरक से लेकर तृतीय आरक के अन्तिम चरण तक पूर्णत सुषुप्त शात हृत्तन्त्री के तार झनक उठे। उनके शात जीवन मे क्रांति के साथ-साथ क्लेश अपना

आधिपत्य जमाने लगा। जिन स्थानों पर कल्पवृक्ष अवशिष्ट रह गये थे, उस ओर यौगलिकों के विशाल झुण्ड दिशा-विदिशाओं से द्रुत गति से बढने लगे। जिन यौगलिकों की आवश्यकतायें उन कल्पवृक्षों से होती आ रही थी वे अपने जीवन के अवलम्बन स्वरूप इन कल्प वृक्षों तक उन अतिक्रमण करने वालों को रोकने का प्रयास करने लगे। इस सब का परिणाम हुआ कलहाग्नि जो यत्र तत्र सर्वत्र प्रदीप्त हो गई। उसे पुनः नाभि कुलकर ने शांत किया, मर्यादाएँ बांधी कि अमुक क्षेत्रावधि तक के यौगलिक इस सीमा तक के कल्पवृक्षों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करें।

इस प्रकार भोगभूमि के अवसान के आसन्न काल में नाभि कुलकर की जीवन संगिनी मरु देवी की कुक्षि से इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म हुआ। इन सारी घटनाओं को अभिनय के माध्यम से आषाढ़भूति ने रंगमंच पर इस प्रकार प्रस्तुत, प्रदर्शित किया कि दर्शक अपने आपको प्रथम आरक से लेकर आज तक के सुदीर्घ काल के कालक्रमानुगत घटनाचक्र का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगे।

भगवान ऋषभदेव के शैशव काल की मनोहारिणी

लीलाओ का अभिमचन देखकर तो आवालवृद्ध दर्शक समूह आनद सागर मे आकण्ठ निमग्न हो अनिर्वचनीय आनद का अनुभव करने लगा। भगवान् ऋषभदेव के किशोर वय मे पदार्पण करते करते, कल्पवृक्षो ने एक प्रकार से यौगलिको को जीवन निर्वाह के लिये परमावश्यक सामग्री का देना भी बद ही कर दिया। जठराग्नि की ज्वालाओ से अभिभूत यौगलिको के विशाल समूह सभी दिशाओ एव विदिशाओ से नाभि कलकर के समक्ष उपस्थित हो अपनी जठराग्नि की भीषणता एव दु स्सह्यता का वर्णन करते हुए करुण क्रदन करने लगे। वे पुन पुन साजलि शीष झुका नाभिराज से निवेदन करने लगे—"नाभिराज! कृपा कर जितना शीघ्र हो सके हमारे उदर की इस आग को शात करने का उपाय वताइये। हमारे प्राण निकल रहे हैं। हमारे अग प्रत्यग, व रोम रोम शिथिल एव निस्सत्व हो रहे हैं। इस हृदयद्रावी दृश्य को देखकर दर्शक भी करुणासागर मे गोते लगाने लगे। दर्शको ने देखा कि यौगलिको के नयनो से प्रवाहित अनवरत अश्रुधाराओ के प्रपात नाभिराज के प्रासाद के प्रागण को आप्लावित करने लगे। दया से द्रवीभूत नाभिकुलकर को यौगलिको के इस दु स्सह्य दु ख को मिटाने का जब कोई उपाय दृष्टिगोचर नही हुआ तो उन्होने जिज्ञासा भरी दृष्टि से अपने पार्श्व मे ही विराजमान ऋषभकुमार की ओर दृष्टिनिपात

किया। महाराज नाभि ऋषभ कुमार के अद्भुत अलौकिक गुणों से पूर्णतः परिचित थे। शैशव काल से ही उनके असाधारण बुद्धिकौशल व सूझबूझ, उनकी अनुपम शारीरिक एवं आध्यात्मिक शक्ति के परम प्रभावकारी चमत्कारों ने महाराज नाभि के मन मस्तिष्क और हृदय पर अमिट छाप अंकित कर दी थी। कुमार की ओर दृष्टि निपात का यही तात्पर्य था कि इस प्रकार के प्राकृतिक परिवर्तन-जन्य संक्रान्ति काल में नितरां असहाय मानवता के प्राण संकट को दूर करने में केवल एक वे (ऋषभ कुमार) ही समर्थ हैं। उनके अतिरिक्त और कोई ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता जो मानवता का इस प्रकार के घोर संकट से त्राण कर सके।

अपने पितृदेव की आंतरिक इच्छा की पूर्ति हेतु दृढ़ संकल्प के साथ ऋषभकुमार ने सांजलि शीष झुकाते हुए अतीव विनम्र स्वर में नाभिराज से निवेदन किया—"तात्! अब प्रकृति करवट बदल रही है। उसी प्रयास के पूर्व की यह अंगड़ाई मांत्र है। पितृदेव यह दो महान युगों का संधिकाल है। कर्मयुग अब इस आर्यधरा पर पद निक्षेप करना चाहता है। इसी कारण भोग-युग अपने सभी प्राकृतिक साधनों को समेट रहा है। भोग युग में मानव को अपने अशन-वसन-पानादि की प्राप्ति के लिये किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता। इसके विपरीत कर्मयुग में अपने जीवन निर्वाह हेतु सामग्री की प्राप्ति के लिये मानव को प्रयास करना पड़ेगा। भोगयुग में

अनायास मानव की सभी प्रकार की आवश्यकताओ की पूर्ति प्रकृति प्राकृतिक कल्पवृक्षो के माध्यम से कर देती है और कर्म युग मे विना कर्म-पौरुष अथवा प्रयास के जीवनोपयोगी कोई सामग्री अवाप्त नही हो सकती। प्रकृति की इस करवट को आपने अपने जीवन मे अनुभव भी किया है और देखा भी है। आपके किशोर काल से इस अवस्था तक प्रकृति ने कितने परिवर्तनकारी स्वरूप धारण किये हैं, इनके प्रमाण स्वय पितृचरण हैं। इस युग-परिवर्तन की स्थिति मे अव प्रत्येक मानव को आने वाले कर्मयुग के अनुरूप अपने आप को ढाल कर कटिवद्ध हो कर्मक्षेत्र में उतरना होगा। इस घोर सकट से रक्षा का अव एक मात्र यही उपाय है। क्योंकि भोगयुग के स्तभ स्वरूप साधन कल्पवृक्ष अव त्वरित गति से तिरोहित हो रहे हैं, अब तो सव को कर्म करने के लिये कटिवद्ध हो कर्मक्षेत्र मे उतरना ही पडेगा।"

महाराज नाभि ने प्रश्न भरी दृष्टि से समुपस्थित योगलिकों के विशाल समूह की ओर दृष्टिनिपात किया। सहसा सहस्र सहस्र कण्ठो से एक गगन भेदी घनरव गभीर घोष गुजरित हो उठा—"नाभिराज। हम कुमार के प्रत्येक इगित पर अपने प्राणो तक को न्यौछावर कर देने की अटल प्रतिज्ञा करते हैं। ऋषभकुमार ने पितृचरणो मे नमन करते हुए निवेदन किया—"देव। यदि आप आज्ञा प्रदान करे तो मैं भोग युग के इन सरलमना भोले मानवो

को कर्मभूमि का पहला पाठ सक्रिय रूप से सिखा, भोग युग से कर्म युग में पदार्पण करने का पथ प्रदर्शित करूं।" महाराज नाभि ने अभूतपूर्व आनंद की अभिव्यक्ति के साथ अनुज्ञा प्रदान की और कहा—"वत्स! तुम्हारे गर्भावतरण के समय से ही हमें विश्वास हो गया था कि विश्व के कल्याण के लिये आदि गुरु, आदि राजा, आदि शास्ता, आदिनाथ के रूप में आपका अवतरण होने जा रहा है। अब वह समय आ गया है कि प्राकृतिक परिवर्तन के इस संक्रांति काल में लोगों का त्राण कर लोक गुरु के विरुद को सार्थक सिद्ध करो। बस यही मेरी शुभ कामना है।"

रंगमंच पर भगवान् ऋषभदेव के आद्य गुरु के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए सूत्रधार आषाढ़भूति ने दर्शकों को दिखाया—"यौगलिकों के एक सुविशाल समूह के साथ ऋषभकुमार वन की ओर प्रस्थित हुए।" सघन वन में पहुंच कर्म युग का पहला पाठ पढ़ाते हुए वन्य, स्वतः संभूत शस्य की ओर इंगित किया—"यह वन्य धान्य है, भविष्य में इस प्रकार के धान्य को उत्पन्न करने के लिये कठोर श्रम करना पड़ेगा। क्या और किस तरह तुम्हें करना होगा, इन सब तथ्यों से मैं तुम्हें समय पर समुचित रूप से अवगत कर दूंगा। यह वन्य तण्डुल हैं, ये गोधूम (गेहूं) और यह व्रीहि (यव) हैं। इनकी बालियों को तोड़कर और दोनों करतलों के बीच मसलकर धान्य का

फूस से पृथक् करण किया जाय। यह वन्य धान्य अभी कच्चा है और है मीठा, इसके खाने से तुम्हारे उदर की अग्नि शात हो जायेगी।" इसी प्रकार ऋषभकुमार ने कर्म युग के कर्तव्यो से नितान्त अनभिज्ञ उन भोग भूमि के अनजान व भोले समाज को उस समय उस वन मे विद्यमान सभी प्रकार के धान्यो का परिचय करवाया।

ऋषभकुमार से पेट की ज्वाला को शात करने के उपाय को सुनकर यौगलिको ने वन्य धान्य की बालियो को तोड, करतलो से मसल और फूस हटाकर कच्चे वन्य धान्यो को खाना प्रारभ किया। इस प्रकार कुछ ही क्षणो मे उनकी जठराग्नि शान्त हुई। और उन यौगलिको ने फुल्लारविंद तुल्य अपने आयत लोचनो से ऋषभकुमार की ओर एक टक देखते हुए भविष्य मे भी उन पर इसी प्रकार कृपा करते रहने की प्रार्थना के साथ-साथ पुन पुन कृतज्ञता प्रकट की। ऋषभकुमार ने अनेक प्रकार के सुस्वादु फलो से लदे वृक्षो का परिचय कराते हुए बताया—"ये अमुक अमुक नाम से अभिहित किये जाने वाले फल हैं। इनसे क्षुधा और तृषा दोनो का उपशमन होता है।" धान्यो और फलो का बोध देने के अनतर ऋषभकुमार ने वन्य कन्दो, मूलो और फूलो का भी परिचय उन्हे कराया और कहा—"अन्न और फलो की भाँति ये कन्दमूल-फूलादि भी क्षुधा की अग्नि को शान्त करने वाले हैं। अपनी अपनी रुचि के अनुसार आप लोग

इन अमुक अमुक भांति के धान्यों, फलों, कन्दमूलों आदि से अपनी क्षुधा को शान्त कर सकते हैं।" कर्म युग के इस प्रथम पाठ का उपसंहार करते हुए ऋषभ कुमार ने कहा—"हे कर्मवीरो! दो युगों के इस सन्धिकाल में निवर्तमान भोग युग का प्रभाव अभी कुछ अंशों में कुछ और समय तक प्रभावी रहेगा। क्योंकि अभी तक कर्म युग के पल्लवन का परिपक्व समय नहीं आया है। ये वन्य धान्य फल पुष्प कन्दमूलादि सदा सभी ऋतुओं में स्थिर अथवा उपलब्ध नहीं होते। आप लोगों को अपने परिश्रम से इन धान्यादि के बीजों से इनकी उपज करनी होगी, उसे आवश्यकतानुसार बढ़ानी होगी; और उसके संचित भण्डार रखने होंगे। समय-समय पर आपको सभी उपयोगी कर्तव्यों से अवगत करता रहूंगा।"

ऋषभ कुमार के पद-चिन्हों पर चलते हुए जब यौगलिक नाभिराज के सम्मुख उपस्थित हुए तब सभी पूर्णतः प्रसन्न वदन थे। सब के अंग अंग और रोम रोम से सन्तोष के साथ-साथ आनंद की ऊर्मियां प्रकटित हो रही थीं। कुमार के साथ यौगलिकों के विशाल जनसमूह को सर्वथा सन्तुष्ट और पूर्णतः प्रसन्न देखकर नाभिराज के हर्ष का पारावार न रहा। वे स्वयं अपने आप में इस बात पर आश्वस्त हुए कि मानवता पर आये हुए एक घोर संकट को उनके सुपुत्र देवतुल्य ऋषभकुमार ने संभवतः सदा के लिये टाल दिया है। ऋषभकुमार ने नाभिराज के

समक्ष उपस्थित हो उन्हे वस्तुस्थिति से अवगत कराते हुए निवेदन किया—"तात! मैंने आपका आदेश शिरोधार्य कर इन भोगयुगीन यौगलिको को कर्मयुग का प्रथम पाठ सिखाते हुए उन्हे अपनी क्षुधा शात करने का उपाय बता दिया है।" हर्ष विभोर हो नाभिराज ने यौगलिक समूह पर जिज्ञासापूर्ण दृष्टि निपात किया। अपने आतरिक आल्हाद को प्रकट करते हुए यौगलिको ने समवेत स्वर मे कहा—"महाराज! कुमार ने न केवल हमारी क्षुधा तृप्ति की वरन् जठराग्नि के प्रज्वलित होने पर तत्काल उसे शात कर देने का अमोघ उपाय भी बता दिया है।"

रगमच पर कर्मभूमि के प्रथम सूत्रपात की घटना का सागोपाग विवरण देखकर दर्शको ने अनुभव किया कि सुदीर्घ अतीत मानो उनके समक्ष आज पुन अपने उसी रूप मे आ उपस्थित हुआ है।

कुछ समय तक इस प्रकार यौगलिको का जीवन वन्य धान्यो, फलो, पुष्पो एव कन्दमूलो के सहारे सुखपूर्वक व्यतीत होता रहा। एक दिन यौगलिको का एक छोटा सा समूह कुमार के समक्ष उपस्थित हुआ, और अपनी व्यथा को सुनाते सुनाते रोने लगा। ऋषभकुमार ने रोग के कारण को भापते हुए कहा—"अब धान्य कुछ पकने लग गये हैं, अब उन्हे अपने करतलो से मसल कर और कुक्षि आदि से कुछ ताप पहुचाने के पश्चात् खाया जाय।" यौगलिको ने कुमार को अपना विधाता समझते हुए उनके आदेश का अक्षरश पालन किया। अब धान्य

पूर्णतः पकने लगे थे। कुमार ने वन्य धान्यों को काट पीटकर धान्य संग्रह का यौगलिकों को परामर्श दिया। पके हुए धान्य को कुमार के निर्देशानुसार यौगलिकों ने काट पीट एवं साफ कर उसका भूमि में भुंवारे खोद संचय किया।

प्रकृति अब अंगड़ाइयां लेने के अनंतर अठखेलियां करने के लिये समुद्यत हो चुकी थी। वायु के झोंकों से दो बांसों का परस्पर घर्षण हुआ, घर्षण के परिणाम स्वरूप अग्नि उत्पन्न हुई और वन धायं धायं कर जल उठा। इस अदृष्टपूर्व दृश्य को देखकर यौगलिक भागते हुए सीधे ऋषभकुमार के समक्ष उपस्थित हुए। मतिश्रुतावधि-त्रिविध ज्ञान के धारक कुमार ऋषभ ने समझ लिया कि अब अग्नि के प्रादुर्भाव के साथ ही साथ कर्मभूमि के अनुरूप ही प्राकृतिक वातावरण बनने वाला है। कुमार ने यौगलिकों के साथ जाकर उन्हें दावाग्नि को बुझाने के उपाय बताये। कुमार के निर्देशानुसार आग की बढ़ती हुई लपटों को रोकने के लिये चारों ओर के वन को घास फूंस आदि से तत्काल साफ कर डाला। सहस्रों हाथों से एक साथ फेंकी गई मिट्टी ने दावाग्नि को थोड़ी ही देर में शान्त कर दिया। कुमार ने अग्नि प्रज्वलित करने के अनेक उपाय भी यौगलिकों को बताये। अब तो कर्म युग के स्वागत हेतु सभी ओर अनेक प्रकार की तैयारियां आरम्भ हो गई। ऋषभ कुमार ने सर्वप्रथम अशनपानादि

के रखरखाव, सचय आदि के लिये मृद्पात्र बनाने की कला यौगलिको को सिखाई। और इस कला मे पारगत लोगो को प्रजापति की उपाधि से अलकृत किया।

ऋषभकुमार ने यौगलिको को वन्य पशुओ को पालने, उनसे दूध,वछडे आदि प्राप्त करने, बैलो, घोडों और हाथियो से विशाल भू-भाग को कृषि योग्य बनाने आदि अनेक कलाओ की शिक्षा प्रदान की। कल्पवृक्षो के तिरोहित हो जाने के परिणाम स्वरूप अब मानव मात्र के लिये आवास की व्यवस्था परमावश्यक हो गई थी।

कर्मक्षेत्र मे स्वतत्रता एव सुखपूर्वक स्वावलम्बी जीवन यापन करने के लिये जितनी भी कलाओ की आवश्यकता होती है, यौगलिको ने उन सभी कलाओ की शिक्षा ऋषभकुमार से प्राप्त की। कलाओ के सीखने के पश्चात् आर्यभूमि के इस कोने से उस कोने तक यातायात के लिये पक्के मार्ग, नदियो पर पुल, और समतल पर उठे हुए भूमिभागो मे ग्रामो, नगरो के रूप मे भवनो का निर्माण कर विशाल सुन्दर जनपदो को बसाया गया। प्रत्येक भवन के पृष्ठभाग मे कूप, जलकुण्ड और बगीचे तैयार किये गये। वन्य धान्य के पके बीजो को संचित करने का परामर्श प्राप्त कर यौगलिको ने प्रत्येक घर के धान्यागार मे धान्य एकत्रित किया। पाले हुए बैलो और घोडो से अपने महान-जन-नायक ऋषभकुमार के निर्देशानुसार जमीन को जोतकर यौगलिको ने कृषि योग्य

बनाया। अब वे भोग भूमि के यौगलिक नहीं किन्तु कर्म भूमि के कसकर श्रम करने वाले कर्मठ कार्यकर्ता थे। ग्रामों नगरों एवं जनपदों के निर्मित हो जाने के साथ ही साथ कृषि योग्य विशाल भूभाग कृषि के लिये जोतकर तैयार कर दिया गया। समय पर सुवृष्टि हुई, लोगों ने अपनी अपनी भूमि पर बीज बोये, आर्यधरा का बहुत बड़ा भूभाग अंकुरों से शस्य श्यामल हो उठा। समय समय पर वर्षा के परिणाम स्वरूप वे अंकुर धान्य के हरे-भरे पौधों के रूप में लहलहा उठे, उन पर सुनहरी बालें आयीं और चारों ओर वायु के मन्द मन्द झोंकों से झूमती हुई बालों का एक नयनाभिराम दृश्य यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगा मानो धरा हरितिमा लिये स्वर्णिम परिधान पहन कर नव वधू के समान थिरक रही है। समय पर पका धान्य काटकर खलिहानों में रखा गया, बैलों और घोड़ों के क्षुरों से उसे कुचल कर उफानने योग्य बनाया गया। मन्द मदिर बयार में इस प्रकार तैयार की गई धान्य और भूंसे की मिश्रित राशियों को पृथक् किया गया। गाड़ियों द्वारा अनाज खलिहानों से घरों के धान्यागारों में भरा गया। सम्पूर्ण धरा धान्य के विशाल भण्डारों से सम्पन्न अन्नपूर्णा सी प्रतीत होने लगी। इस प्रकार काल के प्रभाव से तिरोहित भोग भूमि के स्थान पर मानव के बुद्धिबल और अथक श्रम के परिणाम स्वरूप शस्य श्यामला पृथ्वी अहर्निश श्रम, संलग्न कर्म, वीर कर्मठ नर-नारियों की श्रमसाधना से फल प्रसू हुई। इस

प्रकार मानव सस्कृति के सूत्रधार अथवा आदि कर्ता कुमार ऋषभदेव के कृपाप्रसाद से कर्मयुग उत्तरोत्तर प्रगति के पथपर त्वरित गति से अग्रसर होने लगा।

सब ओर प्रजा पूर्णत समृद्ध और सुख सम्पन्न थी। अभाव अभियोग का कही कोई नाम तक सुनाई नही देता था। खानो से लोहा, तावा, पीतल, शीशा, चादी, सोना आदि अनेक प्रकार की धातुये और हीरे, माणिक, नीलम, पुखराज, पन्ना आदि जगमगाते जवाहरात और समुद्र से तथा पचत्व को प्राप्त मदोन्मत्त गजराजो के कपालो से महार्घ्य मोती निकाले जाने लगे।

इस प्रकार सम्पन्न प्रजा की सुरक्षा एव न्याय नीति की परिपालना हेतु प्रजा के लिये एक शासक की आवश्यकता हुई अत कुलकर महाराज नाभि के परामर्शानुसार ऋषभ कुमार को स्वर्णनिर्मित एव रत्नजटित राज-सिहासन पर आसीन कर प्रजा द्वारा उनका वडे हर्षोल्लास के साथ राज्याभिषेक किया गया। अपने अनन्य परोपकारी ऋषभकुमार को महोच्च राजसिहासन पर आसीन करते समय कर्म भूमि के आदि कर्मठ कार्यकर्ता नर-नारी समाज ने अभूतपूर्व वाणी अथवा लेखनी द्वारा अनभिव्यजनीय आल्हाद का अनुभव किया। सब ने नतमस्तक हो अपने नवाभिषिक्त आदि राजा ऋषभकुमार को नमन करते हुए समवेत स्वर मे कहा—"नाथ! आज से आप हमारे प्राणाधार सर्व रक्षक

राजराजेश्वर और हम आपकी आज्ञानुवर्तिनी प्रजा हैं। हम आपके प्रत्येक आदेश का प्राणपण से पालन करेंगे। आपके एक इंगित पर हम सब अपना सर्वस्व न्यौछावर करने हेतु कटिबद्ध रहेंगे। यदि कभी आवश्यकता पड़ गई तो आपके पसीने की एक बूंद के पीछे हम अपने रक्त की महानदियां प्रवाहित कर देंगे। यह हमारा दृढ़ संकल्प है और यही है हमारी अटल प्रतिज्ञा।

अब कहीं भी भोग-भूमि का चिन्ह अवशिष्ट नहीं रह गया था। अतः मानवता को कर्म-भूमि के ढांचे में ढालने के लक्ष्य से उन्होंने अभिनव मानव संस्कृति का सूत्रपात किया। आदि राजा ऋषभदेव

"दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः।
नीतित्रितयकर्ता यो, युगादौ प्रथमो जिनः।।"

(मनुस्मृति)

समाजनीति, राजनीति और धर्मनीति इन तीनों प्रकार की नीतियों के निर्माता-सूत्रधार अथवा संस्थापक थे। उन्होंने सर्वप्रथम मानवता को मर्यादा में आबद्ध करते हुए समाजनीति, अर्थनीति और राजनीति का नियमन किया। कर्म भूमि के अभिनव सिद्धांतों को क्रियान्वित करते हुए महाराज नाभि ने ऋषभकुमार का सुमंगला और सुनंदा नाम की दो कुमारियों से पाणिग्रहण संस्कार कराया। यह समाज व्यवस्था के सूत्रपात की प्रथम श्रृंखला थी।

आषाढ़भूति ने रंगमंच पर जिस समय ऋषभ कुमार के

विवाह का दृश्य दिखाया तो यौगलिक नरनारियो के असीम उल्लास और आश्चर्य-मिश्रित हाव भाव एव उद्वेलित अथाह उदधि की अतिलोल उत्ताल तरगो के समान उनके रोम-रोम से उठती हुई उमगो को देखकर दर्शक रसानुभूति और साधारणीकरण से चित्रवत् हो गए। रस निर्याप्ति का यह अनन्य प्रमाण था।

विवाह के उपरान्त भी कुमार ऋषभ अपनी प्रजा के अभ्युदय, उत्थान एव विकास हेतु अहर्निश प्रयत्नशील रहते। कुमार ऋषभ के ये प्रयास अभिनव मानव सस्कृति को पुष्पित, पल्लवित एव विकसित करने मे प्रभावकारी एव प्रेरक सिद्ध हुए।

एक रात्रि, महादेवी सुनदा ने सुख पूर्वक सुप्तावस्था मे १४ शुभ स्वप्न देखे। १४ महास्वप्नो को देखते ही महादेवी की निद्रा भग हुई। उन्होने अथाह आनद के सागर मे डुबकिया लगाते हुए अनुभव किया मानो वह एकान्तत सुख से ओत प्रोत किसी दिव्य लोक मे ऊची उडाने भर रही हो। उसका अग प्रत्यग और रोम रोम अमृत पान तुल्य अनिर्वचनीय आनद का अनुभव कर रहा था।

वे सुख शय्या से उठी और मन्थर गति से उनके चरण सरोज हठात् कुमार ऋषभ के शयन कक्ष की ओर अनायास ही उठे। ऋषभकुमार प्रगाढ़ निद्रा मे प्रसुप्त थे। महादेवी सुनन्दा उनके पर्यंक पर पावो की ओर बैठ गई। और अपने कुसुम कुड्मल कोमल करपल्लवो से अपने

प्राणनाथ के पादपद्मों को शनैः शनैः सहलाने लगी। महादेवी के करपल्लवों के स्पर्श से कुमार उन्निद्र हुये, और महादेवी को देखकर हठात् उठ बैठे। आश्चर्य मिश्रित मधुस्वर में ऋषभकुमार ने महादेवी से प्रश्न किया—

"महादेवी कुशल मंगल तो है? आज उषाकाल से घटिका पूर्व ही अकस्मात् यहां मेरे शयन-कक्ष में शुभागमन कैसे हुआ? हां देवी! आज तुम अत्यंत हर्ष विभोर प्रतीत हो रही हो। तुम्हारे केवल मुखमण्डल से ही नहीं अपितु कनकलता तुल्य देहवल्लरी के अंग प्रत्यंग एवं रोम रोम से एक अतिकमनीय अलौकिक-आभा भा-मण्डल की भांति दमक रही है। तुम्हारी मुखमुद्रा और अधरों के स्पन्दन से स्पष्टतः यह प्रकट हो रहा है कि तुम आज मुझे कोई अतीव सुखप्रद संवाद सुनाने की उत्कट अभिलाषा से यहां आई हो।" देवी सुनंदा वीणा की झंकृति से भी नितरां अतीव सम्मोहक सुमधुर स्वर में बोली—"प्राण नाथ! आप श्री का अनुमान शत प्रतिशत यथार्थ है।"

"तो देवी वह सुखद सुमधुर सुसंवाद मुझे सुनाकर अपने अन्तर्मन में उद्वेलित आनंद सागर को मेरे मानस में भी उंडेल कर उसे तरंगित कर दो।"

लज्जातिरेक वशात् कुछ क्षणों तक ग्रीवा झुका मौन रहने के अनंतर देवी सुनंदा ने कहा—"नाथ! आज मैंने

अभी-अभी उन्निद्रावस्था मे चौदह महास्वप्न देखे हैं। सक्षेप में चौदह स्वप्नो का विवरण प्रस्तुत करते हुए सुनदा ने कहा—"जगत् वद्य जीवन-धन! इन स्वप्नो को देखने के साथ ही साथ मेरे अन्तर मे अलौकिक उल्लास और आल्हाद का सुधासागर लहरा रहा है। सघन श्याम घनघटा को देखकर जिस प्रकार मयूर आत्म विभोर हो "मेह आओ, मेह आवो" की मीठी बोली के माध्यम से अपने आन्तरिक आल्हाद को न केवल अपने सन्निकट ही अपितु दूर दूर के वातावरण मे उल्लास बिखेरता हुआ नाच उठता है, ठीक उसी प्रकार मेरा मत्त मन-मयूर भी किसी अननुभूत अनुपम आनद की उपलब्धि की प्रतीक्षा में नाच उठा है।"

चौदह स्वप्नो का विवरण सुनने के अनतर मतिश्रुतावधि-ज्ञानत्रयी के धारक ऋषभकुमार ने गभीर सुधासिक्त स्वर मे कहा— "महाभाग्यवती! तुम्हारे द्वारा देखे गये ये चौदह महास्वप्न गर्भाधान के समय केवल वे ही माताये देखती हैं, जो चतुर्विध धर्मतीर्थ के सस्थापक तीर्थेश्वर अथवा षट्खण्डो की साधना कर चक्रवर्ती सम्राट् पद पर अधिष्ठित—अभिषिक्त होने वाले पुत्र-रत्न को जन्म देती हैं। ये चौदह स्वप्न सुखद भावी के सूचक हैं कि तुम महान् भाग्यशाली चक्रवर्ती सम्राट् को समय पर जन्म दोगी। तुम्हारा वह पुत्र विपुल वैभव, विजय, यशोकीर्ति, अष्टसिद्धि, नवनिधि का स्वामी होकर अन्ततोगत्वा इसी भव मे जन्म-जरा-मृत्यु के वधनो को

काट अमर पद प्राप्त करेगा। महादेवी वस्तुतः तुम धन्य हो, और हो बधाई की पात्र। कुक्षि में समागत उसी महान् सौभाग्यशाली पुण्यात्मा के पुण्य प्रताप से तुम इस प्रकार का अनुपम आल्हाद अनुभव कर रही हो।"

स्वप्न फल को सुनकर अपने आपको कृतकृत्य और अपने जन्म को सफल मानती हुई देवी सुनंदा आनंद मग्न हो गई।

कुछ क्षणों तक अपने पति श्री ऋषभकुमार की पर्युपासना करने के अनंतर महादेवी सुनंदा मन्थर गति से अपने शयन कक्ष में लौट गईं, और जाग्रत अवस्था में ही उन्होंने शेष रात्रि व्यतीत की। समुचित सुयोग्य आहार-विहार पूर्वक देवी सुनंदा अपने गर्भ का पालन करती हुई उच्च कोटि के आदर्श विचारों में ही निमग्न रहतीं।

कपितय दिनों पश्चात् देवी सुमंगला ने भी शुभ स्वप्न देखे। देवी सुनंदा की भांति ही सुमंगला ने भी अपने पति के समक्ष उन स्वप्नों का विवरण प्रस्तुत किया। ऋषभकुमार से अपने स्वप्नों का यह फल सुनकर कि वह एक अद्भुत महाशक्तिशाली चरम-शरीरी पुत्र रत्न और सकल कलाओं की निधान एवं अनुपम सुन्दरी पुत्रीरत्न को जन्म देगी, देवी सुमंगला के हर्ष का भी पारावार न रहा और कालान्तर में महादेवी सुनंदा ने अपनी रत्न-कुक्षि से एक महातेजस्वी पुत्र-रत्न के साथ ओज पुञ्ज कन्या-रत्न को जन्म दिया।

गर्भ काल पूर्ण होने पर सुमगला ने भी एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया। कालान्तर मे देवी सुमगला ने समुचित समय के अन्तराल से उनपचास बार मे पुत्र युगलो के रूप मे ९८ वे पुत्र रत्नो को जन्म दिया।

महाराज नाभि के प्रासाद मे आनदोत्सव की झडी लगी रही। ऋषभकुमार ने अपनी बडी पुत्री ब्राह्मी के माध्यम से तत्कालीन मानवता को लिपि का ज्ञान प्रदान कर चौदह विद्याओ मे निष्णात किया। अपनी लघु पुत्री सुन्दरी के माध्यम से आर्यधरा के तत्कालीन और भावी महिला समाज को ६४ कलाओ के ज्ञान से और बाहुबली के माध्यम से पुरुष वर्ग को ७२ कलाओ के ज्ञान से सुसम्पन्न एव समृद्ध किया। अपने बडे पुत्र भरत को सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रो के सञ्चालन की शिक्षा प्रदान कर कर्मभूमि के मानवो को स्वतत्रतापूर्वक ससम्मान जीने की कला मे निष्णात किया।

इसी प्रकार अपने शेष ९८ पुत्रो को अनेक प्रकार की उपयोगी कलाओ, विद्याओ आदि की शिक्षा पदान कर जनता को सभी प्रकार की विद्याओ से सुसम्पन्न किया। असि, मसि और कृषि इन तीनो ऐहिक विषयो से सबधित सभी कार्यकलापो का, विद्याओ का एवम् इनके भेदप्र भेदो की सभी प्रकार की शिक्षा का ज्ञान ऋषभकुमार ने अपने पुत्रो, पुत्रियो एवम् अन्य प्रतिभाशाली किशोरो के माध्यम से तत्कालीन मानव समाज को प्रदान किया।

कुछ ही समय पूर्व जहां यौगलिक नितांत शांत और स्वयं में मग्न दृष्टिगोचर होते थे, उसी धरा पर संपूर्ण मानव समाज यत्र-तत्र-सर्वत्र किसी न किसी कार्य में निमग्न दृष्टिगोचर होने लगा। कुंभकार आदि कर्मकार अपने कार्य-कौशल का, शिल्प का, और कर्मठता का चमत्कार दिखाने में संलग्न रहने लगे। किशोर एवं युवक असि आदि शस्त्रों के संचालन में निष्णातता प्राप्त करने में संलग्न रहने लगे। कृषक कृषि-भूमि को उपजाऊ बनाने और उससे अधिकाधिक उपज लेने के लिये प्रयास करने लगे। भूगर्भ में छिपी अनेक प्रकार की संपदाओं को खनन कर निकालने में अगणित हाथ कर्मठता के साथ अपना कौशल प्रकट करने लगे। जो धरा भोगयुग के समय चारों ओर शांत दृष्टिगोचर होती थी, वह अब संकुल और कर्म प्रधान हो रही थी। सम्पूर्ण आर्यधरा देवविमानोपम गगनचुंबी भवनों, शीशों के समान चमचमाते स्वच्छ विस्तीर्ण पथों, अनेक प्रकार के सुस्वादु फलों के भार से विनम्र वृक्षों, लताओं एवं गुल्मों से संकुल, उद्यानों से मण्डित हो गई। लहलहाते हुए हरे भरे धान्यों से शस्य श्यामल खेतों की छटा हठात् प्राणी-मात्र को मुग्ध कर रही थी। ग्राम्य एवं नागरीय पाठशालाओं, विद्यालयों, आदि के रूप में शिक्षण संस्थाओं का एक जाल सा बिछा दिया गया। जहां ग्रामवासियों एवं नगरवासियों के बालक-बालिकाओं को प्रारंभिक से

लेकर उच्च से उच्चतम कोटि की शिक्षा दी जाने लगी। प्रजा की रक्षा हेतु राजन्य वर्ग की, जीवनोपयोगी सामग्रियो के आदान-प्रदान, आयात निर्यात क्रय-विक्रय अथवा व्यापार के लिये वेश्य वर्ग की, पशुपालन एव औद्योगिक विकास के माध्यम से जन समाज की सेवा करने वाले कर्मठ कर्मकार वर्ग की ऋषभकुमार द्वारा स्थापना-प्रतिष्ठा अथवा व्यवस्था की गयी। ये तीनो वर्ग ही आगे चलकर कालातर में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों के रूप मे लोक मे प्रसिद्ध हुए।

इस प्रकार ऋषभकुमार ने प्रारभ से ही प्रकृति के अधीन रहते चले आ रहे भोगभूमि के भोले-भाले यौगलिको को अहर्निश व अथक प्रयास से कर्मभूमि का सक्रिय पाठ पढा, सभी भाति सुसम्पन्न वना इस धरा पर एक प्रकार से साकार स्वर्ग ला उतारा, आर्यधरा के निवासियो को स्वावलम्बी वना उन्हे दिव्य देवोपम सुखो मे सुसम्पन्न कर दिया। कही किसी प्रकार के अभाव अभियोग के लिये उस समय आर्यधरा पर अवकाश नही था। यत्र-तत्र-सर्वत्र वस्तुत सुख का ही साम्राज्य दृष्टिगोचर हो रहा था।

इस सव के होते हुए भी आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक त्रिविध ताप से तो कोई भी मुक्त नही था। इन त्रिविध तापो से कोई मुक्त होता भी तो कैसे? क्योंकि जव तक देह से सदा सर्वदा के लिये छुटकारा

अथवा मुक्ति प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक इस त्रिविध ताप से भी मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? इष्ट वियोग, अनिष्ट योग, व्याधि, वार्द्धक्य और अन्ततोगत्वा मृत्यु के घोर अंधकार में व्यक्ति के विलुप्त होने के दुःख से सभी संतप्त थे, पीड़ित थे, और थे दुःखी। परावलम्बी निःस्पृह मानव को स्वावलम्बी, सक्रिय तथा ऐहिक सुखोपभोगों से सुखी एवं सम्पन्न बनाने के अनंतर कुमार ऋषभ देव ने मानवता को त्रीविध ताप से भी मुक्ति दिलाने हेतु चिन्तन करना प्रारंभ किया।

यह दृश्यमान जगत् विनाशशील, क्षणभंगुर एवं इन्द्रजाल तुल्य असत्य है, और है जड़ चेतन के योग की लीला का चमत्कार। एक ओर चेतन सच्चिदानंद घन स्वरूप है, तो दूसरी ओर जड़ चेतन से पूर्णतः विपरीत स्वभाव वाला, ज्ञान लव विहीन आनंद से अछूता और परिवर्तनशील, क्षरणशील, गलनशील, एवं विनाशशील। अपने से नितान्त भिन्न जड़ के साथ संबंध स्थापित कर—जड़ को अपना समझकर चेतन अनादि काल से अनंतानुबंधी दारुण दुःख परंपरा का दयनीय पात्र बना है। अनेक प्रकार के दुःखों एवं भौतिक सुख होते हुये भी अन्ततोगत्वा दुःखों की खान सुखाभासों का दास बना चेतन अनेक प्रकार की दुःखद योनियों में भटकता, रोता, बिलबिलाता, चिल्लाता चला आ रहा है। अनादि काल का यह क्रम वस्तुतः जब तक चेतन

अपनी भूल को नही सुधारेगा, तव तक अनत काल पर्यंत चलता ही रहेगा और इस मे पिलता रहेगा यह चेतन।

एक मात्र मानव जन्म प्राप्त करना ही चेतन के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुयोग है। क्योंकि मानव जन्म प्राप्त करके ही चेतन इन अनादि काल से आ रहे त्रिविध सतापो को, दु सह दारुण दु खो को और इन सबके मूलभूत प्रमुख कारण कर्मबन्ध को नष्ट कर सकता है। सव प्रकार के दु खो का सदासर्वदा के लिये अन्तकर शाश्वत सुख की प्राप्ति वस्तुत एक मात्र मानव तन से ही की जा सकती है, मानवेतर अन्य किसी जीव योनि से नही। मानव की अपेक्षा देवयोनि भौतिक सुखो की दृष्टि से अत्यधिक सौभाग्यशाली व सौख्यशाली है किन्तु एक न एक दिन उन सुखो का भी अन्त अनिवार्य रूपेण अवश्यभावी है। देव योनि की भांति भोग भूमि के यौगलिको को भी सुख की प्राप्ति के लिये किसी प्रकार का श्रम नही करना पडता। प्रकृति प्रदत्त जीवनोपयोगी भौतिक सौख्य सामग्री के आश्रय अथवा आधार पर वे देवयोनि की अपेक्षा स्वल्प, किन्तु कर्म भूमि के मानव की अपेक्षा पर्याप्त रूपेण अधिक सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु भोग भूमि के प्रकृति प्रदत्त सुविधाओ के वल पर निर्भर मानव तन मे कर्मबध को क्षय करने की क्षमता नही होती। क्योंकि भोगयुग के मानव के मस्तिष्क मे इन सासारिक दु खो के मूल भूत कारण कर्मों को नष्ट

करने का संकल्प तो क्या विचार तक भी जीवन भर उत्पन्न नहीं होता।

भोग युग के मानव का जन्म वस्तुतः पूर्वोपार्जित पुण्य के सुफल के भोगोपभोग मात्र के लिये होता है। न वह अपने यौगलिक जन्म में अभिनव प्रभाव कारिणी कर्म प्रकृतियों का उपार्जन ही कर सकता है और न पूर्व कृत अशुभ कर्मों के दलिकों को प्रनष्ट करने में ही प्रवृत्त हो सकता है। इसी कारण कर्मयुगीन कर्मभूमि में मानव-जन्म प्राप्त करना वस्तुतः अपने आप में एक बड़ी ही महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है।

कुमार ऋषभदेव का चिंतन आगे की ओर बढ़ा और उन्होंने अपने समय के मानव के जीवन पर अपनी चिंतन धारा को केन्द्रित कर विचारना प्रारंभ किया– "मेरे समय के भारत की धरा के ये मानव वस्तुतः भोग-युग और कर्मयुग के संधिकाल की परिवर्तित परिस्थितियों की थपेड़ों से, अभाव-अभियोग जन्य कटु अनुभवों की आंच में पक कर श्रम के बलपर स्वावलम्बी बन अपने स्वयं के पैरों पर खड़े हुए हैं। जहां तक भौतिक सुख-सम्पत्ति, भोगोपभोग सामग्री का प्रश्न है, श्रम, कार्य-कौशल आदि से नितान्त अनभिज्ञ होते हुए भी इन भोगयुगीन भोले भाले लोगों ने मेरे प्रति अटूट आस्था, अमिट श्रद्धा एवं प्रगाढ़ भक्ति प्रकट करते हुए मेरे निर्देशानुसार श्रम किया, अपना पसीना बहाया, और देखते-देखते समस्त आर्यावर्त को गगनचुंबिनी अट्टालिकाओं से सुशोभित,

अतिसुरम्य अतिविशाल हरे भरे उद्यानों उपोद्यानो से मण्डित कर दिया। अपने अथक श्रम के बल पर इस धरा पर मानो स्वर्ग ही उतार कर साकार रूप मे रख दिया है। आज ये सब लोग अपने आपको सुसम्पन्न, सुसमृद्ध एव सभी भांति सुखी समझते हैं। अब इन्होने अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली है। और यह अनुभव करते हैं कि अब इन्हे कुछ भी करना शेष नही है। मुझमे अटूट आस्था रखने वाले इन भोले भावुक लोगों की इस भ्रांति को मिटाना मेरा कर्तव्य हो जाता है। इनकी यह भ्रांति किस प्रकार मिटाई जाए और अनत काल तक भयावहा भवाटवी मे ही निरन्तर भटकाते रहने वाले पथ का इनसे परित्याग करवाकर इन्हे किस प्रकार शाश्वत सुख की प्राप्ति के पथ पर अग्रसर किया जाय, इस सबध मे सर्वप्रथम सुपथ की खोज करनी होगी।

भोग युग एव कर्म-युग की सन्धि के सक्रांति काल मे यदि कर्म-युग के अनुरूप श्रम एव कला-कौशल का परिज्ञान इन लोगो को नही करवाया जाता तो इन्हे बडी ही दु खपूर्ण स्थिति का सामना करना पडता। ठीक इसी प्रकार यदि इन्हे ऐहिक जीवन से उत्पन्न त्रिविध ताप के सताप से मुक्ति के साथ शाश्वत सुख की प्राप्ति के उपाय नही बताये गये तो दिग् विमूढ जैसी दुरवस्था से सतप्त मानवता चिंतामणि रत्न तुल्य मानव जन्म को प्राप्त करने के उपरान्त भी उससे कोई लाभ न उठा सकेगी। रगमच पर वैक्रिय लब्धि के प्रताप से ऋषभकुमार के रूप

में विचारमग्न आषाढ़भूति के अन्तर्मन से उद्भूत इस प्रकार के विचार-मन्थन को सुनकर दर्शकों ने यही अनुभव किया मानो तृतीय आरक के अन्तिम चरण में अभिनिष्क्रमण से पूर्व प्रभु आदिनाथ स्वयमेव चिंतनमग्न हों। अपने विचार मन्थन से एक निष्कर्ष पर पहुंचते हुए ऋषभकुमार ने उस सत्पथ को खोज निकालने का दृढ़ संकल्प किया, जिस पर अग्रसर होने से साधक सभी प्रकार के दुःखों का अन्त और शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है।

सत्पथ को खोज निकालने का कार्य बड़ा दुःसाध्य है। इसके लिये पूर्णतः कटिबद्ध हो कर्मक्षेत्र में उतरना होगा। सब प्रकार के सांसारिक बंधनों, राज्य, ऐश्वर्य, परिजन और पौरजनों का तथा स्वयं अपने शरीर तक का मोह—ममत्व त्याग कर सच्चे सुख की राह को खोज निकालना होगा। इस दृढ़ संकल्प के साथ महाराज ऋषभ ने अपने अमात्यों, परिजनों, राजन्यवर्ग एवं पौरजनों को एकत्र कर अपने बड़े पुत्र भरत को राज सिंहासन पर अभिषिक्त किया। तदनन्तर बाहुबलि आदि अपने शेष ९९ पुत्रों को अन्यान्य विभिन्न राज्यों का अधीश्वर बनाकर एक वर्ष पर्यन्त नियमित रूप से प्रतिदिन दान देना प्रारंभ किया। वर्ष पर्यन्त दान देने के अनंतर महाराज ऋषभ ने सब प्रकार के आंतरिक प्रपञ्चों का त्याग कर अपने ४ हजार अनुगामियों के साथ अभिनिष्क्रमण कर अहिंसा, सत्य,

अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पच महाव्रतो को जीवन पर्यन्त अगीकार करते हुये श्रमण धर्म मे प्रव्रजित हुए। श्रमण धर्म अगीकार करने के साथ ही भगवान् ऋषभ देव मन पर्यव ज्ञान के धारक भी बन गये। घोर तपश्चरण के साथ साथ अपने आत्म-चितन रूपी आग्नेयास्त्र से कर्मसमूह ध्वस्त करना प्रारभ किया। मध्यान्होत्तर काल मे प्रभु प्रतिदिन भिक्षार्थ ग्राम अथवा नगरो के घरो मे भ्रमण करते।

रगमञ्च पर आषाढभूति ने प्रभु के भिक्षाटन का दृश्य प्रस्तुत किया तो वहा उपस्थित सहस्रश दर्शको के नेत्रयुगलो से एक साथ गगा यमुनाए प्रवाहित हो उठी। अपने अनन्य उपकारी परम हितैषी एव आराध्य शास्ता को अपने घर आगण मे उपस्थित देख लोगो के हर्ष और आश्चर्य का पारावार न रह जाता। अनेक सद्गृहस्थ रत्नजटित अम्बावारि से सजे हस्तिरत्न, उपस्थित कर प्रभु के चरण कमलों पर अपना उत्तमाग रखकर और अश्रुप्रवाह से प्रभु की पद रज को पखारते हुए निवेदन करते—"महाराज! हम सब को देवोपम समृद्धि उपलब्ध करा नाथ! आप इस प्रकार नगे पाव किस लिये घूम रहे हैं। यह हस्तिरत्न आप ही का प्रदान किया हुआ है। आप इस पर विराजिए और यथेच्छ विचरण कीजिये।" कई सद्गृहस्थ अपनी सुरबालोपमा सुन्दर कन्या को षोडशालकारो से अलकृत कर निवेदन करते— "हे स्वामिन्! यह मेरी सर्वसुलक्षणसम्पन्ना सुपुत्री एक

आदर्श अनुचरी के रूप में आपकी सेवा में अहर्निश तत्पर रहने के लिए समुद्यत है। इसे स्वीकार कीजिए।" कोई गृहस्थ सुवर्ण पात्रों में रत्नराशियां रख प्रभु से अनुनय विनय पूर्वक अभ्यर्थना-प्रार्थना करता –"भगवन्! ये अमूल्य रत्नराशि ग्रहण कर दास को कृतार्थ कीजिये।" प्रभु कुछ लेने की बात तो दूर बिना कुछ कहे आगे की ओर बढ़ जाते।

रंगमञ्च पर आषाढ़भूति ने इस प्रकार का दृश्य उपस्थित किया कि मध्याह्नोत्तर काल में भगवान् ऋषभदेव भिक्षार्थ एक घर से दूसरे घर की ओर भ्रमण कर रहे हैं। उस समय अनेक सद्गृहस्थ प्रभु के समक्ष उपस्थित हुए और प्रभु को साष्टांग प्रणाम करते हुए गिड़गिड़ाकर कहने लगे–"हे नाथ! आर्य धरा के निवासियों के उदर की अग्नि ज्वालाओं को शान्त कर, उन्हें देवोपमैश्वर्य प्रदान करने वाले आप एकाकी मौन धारण किये हुए पाणिपात्र और दिगम्बर वेश में इधर से उधर और उधर से इधर किस कारण भ्रमण कर रहे हैं? अपनी प्रजा को सभी प्रकार की समृद्धियों से परिपूर्ण करने वाले आपको किस वस्तु की कमी है? हे देव! आप कुछ कहें कि आप क्या चाहते हैं? हम जड़मति हैं, बिना बताए आपके अन्तर्मन की बात को नहीं समझ सकते। नाथ! आपका इस प्रकार नंगे पांव एकाकी इधर–उधर घूमना हमसे नहीं देखा जाता। नाथ? कृपा कर आपके दास की झोंपड़ी में पदार्पण कर इस झोंपड़ी को पवित्र कर इस दास

श्रेयास कुमार के द्वारा की गई इस प्रकार की सहायता के परिणामस्वरूप उस महा सामन्त ने शत्रु सैन्य का सहार कर डाला। उसी रात्रि मे सुबुद्धि नामक श्रेष्ठि ने भी स्वप्न मे देखा कि सूर्य की सहस्र किरणे अपने स्थान से विचलित हो रही थी, उन सहस्र किरणो को युवराज श्रेयास ने पुन सूर्य मे प्रतिष्ठापित किया। श्रेयास कुमार के इस प्रकार के प्रयास मे सूर्य सहस्र गुणा होकर चमकने लगा।

प्रात काल हस्तिनापुर के महाराज सोमप्रभ, युवराज श्रेयास कुमार और नगर श्रेष्ठि सुबुद्धि—ये तीनो मिलकर इन स्वप्नो के सबध मे विचार, विनिमय करने लगे। और इस निष्कर्ष पर पहुचे कि, युवराज श्रेयास कुमार को वस्तुत कोई बडा ही अद्भुत और अलौकिक लाभ होने वाला है। उसी दिन मध्याह्नोत्तर काल मे हस्तिनापुर नगर के विभिन्न घरो मे भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए भगवान् ऋषभदेव हस्तिनापुर के महाराज सोमप्रभ के राजप्रासाद के समीप राजमार्ग पर युवराज श्रेयास को दृष्टिगोचर हुए। प्रभु के प्रथम दर्शन से ही श्रेयास कुमार के अन्तर्मन मे आभास हुआ मानो उसने इस प्रकार के वेश को कभी कही देखा है। ऊहापोह करते-करते ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से युवराज श्रेयास कुमार को "जातिस्मर" ज्ञान प्रकट हुआ। पूर्व भव की स्मृति मे उन्होने यह जाना कि ये आरभ-परिग्रह के नि शेष रूप से त्यागी श्रमणोत्तम हैं। इन्हे निर्दोष आहार पानी प्रदान

करना चाहिये। उनके मन में इस प्रकार के विचारों के आते ही राजपुरुष इक्षुरस से परिपूर्ण घट लेकर प्रासाद में प्रविष्ट हुए। श्रेयांस कुमार के हर्ष का पारावार न रहा। प्रभु के सम्मुख उपस्थित हो प्रदक्षिणा पूर्वक प्रभु को वंदन-नमन करने के अनंतर एक इक्षु घट को अपने हाथों में ले प्रभु से प्रार्थना की प्रभो! ये निर्दोष एवं कल्पनीय इक्षु रस ग्रहण कर दास को कृतार्थ कीजिये। प्रभु ने हाथ बढ़ाया तो युवराज श्रेयांस ने प्रभु की अञ्जलि में समस्त घट पूरे विवेक के साथ में उंडेल दिया। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने चैत्रकृष्णा अष्टमी को ग्रहण किये गये प्रथम तप षष्ठ भक्त का पारणा तेरह मास दस दिन पश्चात् अक्षय तृतीया के दिन किया।

''अहो दानं अहो दानं'' के चतुर्दिक् महाघोष से नभोमण्डल गुञ्जरित हो उठा। आदि तीर्थंकर प्रभु आदिनाथ को दिये गये इस महादान की घटना के परिणाम स्वरूप वैशाख शुक्ला तृतीया का दिन अक्षय तृतीया के नाम और सात्विक दान के प्रथम दाता श्रेयांस कुमार सात्विक दान के सूत्रधार के रूप में विख्यात हुए।

इस प्रकार घोर तपश्चरण एवं अनवरत चिंतन की अग्नि में घनघाति कर्मों को नष्ट कर भगवान् ऋषभदेव ने केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त किया। इस पुण्यभूमि पर प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल में भगवान् ऋषभदेव सर्वप्रथम साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूपी

चतुर्विध तीर्थ की स्थापना कर आदि तीर्थंकर के रूप मे विख्यात हुए।

जिस समय भगवान् ऋषभदेव को हुई केवलज्ञान केवलदर्शन की उपलब्धि की सूचना देने दूत भरत की राजसभा मे उपस्थित हुआ, ठीक उसी समय महाराज भरत की आयुधशाला के अध्यक्ष ने आयुधो मे सर्वोत्कृष्ट आयुध चक्ररत्न के प्रादुर्भाव की शुभ सूचना देने राजसभा मे प्रवेश किया। तीसरी ओर उसी क्षण महाराज भरत के अन्त पुर की परिचारिकाध्यक्षा के चर ने भी पुत्ररत्न की प्राप्ति की सुखद शुभ सूचना देने राज सभा मे प्रवेश किया।

एक ही साथ तीन शुभ सूचनाओ को सुनकर महाराज भरत के हर्ष का पारावार नही रहा। इन तीनो वर्द्धापनो मे से किस वर्द्धापन को सर्वाधिक महत्व देकर सर्वप्रथम स्थान देने के साथ साथ सर्वप्रथम उसक महोत्सव को मनाने का आदेश दिया जाय इस प्रश्न पर अन्तिम निर्णय पर पहुचने के लिए महाराज भरत को एक क्षण मात्र का भी विलम्ब नही हुआ। ससार की जितनी भी ऐहिक उपलब्धिया हैं, वें सब विनश्वर हैं। आध्यात्मिक उपलब्धि ही वास्तव मे सच्ची उपलब्धि है और है वस्तुत अविनश्वर एव अक्षय सौख्य प्रदायिनी। "धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षित ।" इस तथ्य को सर्वाधिक महत्व देते हुए महाराज भरत ने प्रभु को हुई कैवल्योलब्धि का महोत्सव सर्वप्रथम मनाने की राज

सभा में घोषणा की, और मातेश्वरी मरूदेवी, परिजनों, पौरजनों आदि के विशाल जन समूह के साथ आदि प्रभु भगवान् ऋषभदेव के चरणों में उपस्थित हुए। समवसरण में विराजमान प्रभु की त्रिलोक मोहिनी महिमा को देखते-देखते हाथी के होदे पर ही विचारमग्ना माता मरूदेवी को केवल ज्ञान-केवल दर्शन की उपलब्धि के साथ-साथ निर्वाण प्राप्ति का अभिमञ्चन तो वस्तुतः आषाढ़ मूति की असंभव को संभव बना देने वाली अलौकिक कला का अप्रतिम प्रतीक एवं जन-जन के मन-मस्तिष्क पर आषाढ़ भूत्ति की अमिट छाप अंकित कर देने वाला दृश्य था। कैवल्योपलब्धि के महामहोत्सव को मनाने के अनंतर क्रमशः पुत्रजन्मोत्सव तथा चक्ररत्न की उत्पत्ति के महोत्सव भी धूमधाम से मनाये गये।

आषाढ़भूति ने चक्ररत्न की उत्पत्ति के अनंतर महाराज भरत की षट्खण्ड साधना हेतु सदलबल सैनिक अभियान के जो दृश्य रंगमंच पर प्रदर्शित किये वे बड़े ही आश्चर्यकारी एवं आह्लादोत्पादक थे। कोटि-कोटि भ्रमरों की गुंजार से भी अधिक कर्णप्रिय-कमनीय और सजल घनघटा के घोर घरघरारव से भी अत्यधिक गंभीर, स्वजनों एवं सुजनों के लिये सुखद-सुंदर किन्तु शत्रुओं एवं असज्जनों के लिए दुःखद, भयावह रव करते हुए चक्र रत्न के नभोमण्डल में आगे-आगे चलते रहने के साथ-साथ चक्रवर्ती और चक्रवर्ती की सेना को

मार्गदर्शन कराते रहने का दृश्य तो दर्शक वृन्द के लिये वस्तुत दैविक चमत्कार से भी अत्यधिक चमत्कृत कर देने वाला था।

महाराज भरत और चतुरंगिणी विशाल वाहिनी का षट्खण्ड-साधनार्थ मार्गदर्शन करता हुआ चक्ररत्न मागध तीर्थ पर पहुचा। वहा द्वादश योजन लबे एव नौ योजन आयत भू मण्डल पर अपनी सेना सहित महाराज भरत ने पडाव डाला। अपने वार्धिक रत्न को अपने लिए एक आवास और पोषध शाला के निर्माण का आदेश दिया। सद्य सुनिर्मित एव सुसज्जित पौषधशाला मे प्रवेश कर महाराज भरत ने समस्त वस्त्राभूषणादि अलकरणो का परित्याग कर साधक वेश मे तेले की तपस्या की।तप की पूर्णाहूति के अनतर चार घटो वाले अश्वरथ मे आरूढ हो चतुरगिणी सेना के जयघोष के बीचमहाराज भरत ने चक्ररत्न द्वारा प्रदर्शित पथ पर पूर्व दिशा मे अवस्थित मागध तीर्थ के तट से लवण समुद्र मे प्रवेश किया। महाराज भरत के रथ की पीजनी जिस समय लवण समुद्र के जल मे भीगने लगी उसी समय अपने सारथी को आदेश दे महाराज भरत ने अपने रथ को रोका। उन्होने क्रुद्ध कृतान्त काल की भृकुटियों के समान भीषण धनुष की प्रत्यञ्चा पर स्वनामाङ्किकत शर का सन्धान किया। शर सन्धाननतर उन्होने लक्ष्यवेध की वैशाखासन मुद्रा मे अवस्थित हो आकर्णान्त प्रत्यञ्चा को खीचते हुए अतीव मृदु उदार घनरव गभीर घोष मे निम्नलिखित

उद्घोष किया—

"आप सब सावधान होकर सुन लें—" मेरे इस बाण के प्रभाव के बाहर जो देव, नाग, असुर और सुपर्ण हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूं। जो देवादि इस बाण की परिधि अथवा प्रभाव में आते हैं, वे भी सावधान होकर सुन लें कि वे सब मेरे वशवर्ती-आज्ञाकारी हों।" इस उद्घोष की पूर्ति के साथ ही महाराज भरत ने अद्भुत् स्फूर्ति के साथ शर को छोड़ा। वायुवेग से बारह योजन की दूरी को आनन फानन में पार कर महाराज भरत का नामांकित बाण घोर शब्द करता हुआ मागध तीर्थाधिपति देव के भवन में गिरा। अपने भवन में गिरे उस बाण को देखते ही मागधतीर्थपतिदेव के दोनों लोचन प्रचण्ड क्रोधातिरेक के कारण लाल हो गये। वह किटकिटाकर दांत पीसने लगा। उसकी भृकुटि तनकर तिरछी हो गई, और वह आक्रोश पूर्ण स्वर में बड़बड़ाने लगा। यह कालीबोली अमावस को जन्मा अप्रार्थित मृत्यु की कामना करने वाला ऐसा निर्लज्ज, दुःस्साहसी कौन है? जिसने मेरे जैसे महान् ऋद्धि शाली देव के भवन में बाण फेंकने की धृष्टता की है?" वह तत्काल बाण के पास पहुंचा और बाण को अवहेलना पूर्वक उठाया।नाम पर दृष्टि पड़ते ही उसका क्रोध उस प्रकार ठंडा पड़ गया जिस प्रकार कि जलते हुए अंगारे पर सौ घड़े पानी डालने से अंगारा। उसके मन में विचार आया कि जम्बू द्वीप के भरत-क्षेत्र में भरत नामक प्रथम चक्रवर्ती उत्पन्न हुये हैं,

वो पट्खण्ड की साधना के लिए अपनी चतुरंगिणी विशाल अनीकिनी के साथ अपने चक्ररत्न द्वारा प्रदर्शित पथ पर अग्रसर होते हुए यहा आये हैं। त्रिकालवर्ती मगध तीर्थाधिप देवो का अनादि से ही यह जीताचार रहा है कि वे चक्रवर्ती के ममक्ष उपस्थित हों उनके समक्ष भेट प्रस्तुत करे। मागध तीर्थाधिपति देव होने के कारण मेरा यह कर्तव्य है कि मैं भी वहुमूल्य दिव्य भेट लेकर उनकी सेवा मे उपस्थित होऊ। मगध तीर्थेश्वर देव इस प्रकार विचार कर हार, मुकुट, कुडल, ककण, भुजवध, वस्त्राभरण, मागधतीर्थ का जल और भरत का नामांकित वाण लेकर उत्कृष्ट देवगति से चलकर जहा भरत चक्रवर्ती अवस्थित थे, वहा आकाश मे उपस्थित हो रुका, पाचो वर्णो के अतीव मनोहारी नयनाभिराम दिव्य वस्त्रधारी मागध देव के घुघरुओ की सम्मोहक मधुर ध्वनि ने भरत और उसके दलबल का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

मागध तीर्थाधिप देव ने जय विजय के घोष से भरत को वर्द्धापित करने के साथ-साथ दोनो हाथ जोडकर उनके सम्मुख उपस्थित हो निवेदन किया—"हे देवानुप्रिय! आपने पूर्व मे मागधतीर्थ की सीमा पर्यंत सम्पूर्ण भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त की, अत मैं आपके राज्य मे रहने वाला आपका किकर आपकी राज्य की पूर्व दिशा की अन्तिम सीमा का सरक्षक हू। अत आप मेरी ओर से भेट मे इस प्रीति प्रदान को स्वीकार कर किकर को

अनुग्रहित कीजिये।"

मागधाधीश देव ने भेंट में लाई हुई हार, मुकुट कंकणादि सभी वस्तुयें भरत को प्रस्तुत की। भरत ने सहर्ष भेंट को स्वीकार कर मागधेश का समुचित सम्मान-सत्कार किया और उसे प्रीति-वर्धक वचनों से प्रमुदित करते हुये विदा किया। मागधाधिपति देव को विदा करने के अनंतर महाराज भरत ने लवण समुद्र में अवस्थित अपने रथ को पीछे की ओर घुमाया और वे सदलबल अपने स्कन्धावार में पहुंचे। स्नान, मज्जन, विलेपन आभरणालंकारादि से अलंकृत होने के अनंतर महाराज भरत ने अष्टम तप का पारणक किया, और मागधतीर्थ कुमार देव का अष्टाह्निक महोत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाने का आदेश दिया।

अष्टाह्निक महोत्सव के सानंद सम्पन्न होते ही चक्ररत्न आयुधशाला से बाहर निकला, उसका दृश्य नटराज आषाढ़भूति ने रंगशाला में देश-विदेश से उपस्थित अनेकों सहस्र दर्शकों के सम्मुख ऐसे चमत्कारी ढंग से प्रस्तुत किया कि उसे देखकर प्रत्येक दर्शक ने आश्चर्याभिभूत हो यही अनुभव किया कि वह साक्षात् भरत चक्रवर्ती के षट्खण्ड साधनाभियान को अपनी आंखों से देख रहा है।

उस चक्ररत्न की नाभि वज्ररत्नमयी, आरे लोहिताक्ष-रत्न मय और धुरा-जम्बूरत्नमयी थी। उसकी अभ्यंतर परिधि में अनेक प्रकार के मणिमय क्षुर प्रवाल थे। यह

मणियो आर दिव्य मोतियो की जालियो से विभूषित था। उसकी चक्रियो से अहर्निश अनवरत भेरी, मृदंग आदि बारह प्रकार के दिव्य वाद्ययत्रो की नितरा कर्णप्रिय अतीव सम्मोहक ध्वनि समस्त वातावरण को मुखरित व गुञ्जरित करती रहती थी। वह उदीयमान भानु की अरुणिम आभा के समान ओजस्वी, तेजस्वी एव भास्वर था। वह अनेक प्रकार की मणिमयी एव रत्नमयी घंटिकाओ की रुचिरपंक्तियो से सुशोभित था। उसके चारो ओर सभी ऋतुओ के चित्र विचित्र वर्णों वाले सुगन्धित एव सुमनोहर पुष्पो की मालाये लटक रही थी। वह आकाश मे चलता था।

बढता हुआ चक्र-रत्न दक्षिण दिशा मे अवस्थित वरदाम तीर्थ के पास पहुचा। अष्टम भक्त के तपश्चरण के अनतर मागधतीर्थाधिप देव की भांति ही वरदाम तीर्थ कुमार देव की भी साधना की। वरदाम तीर्थ कुमार देव ने चक्रवर्ती भरत की अधीनता स्वीकार कर उन्हे दिव्य वस्त्रालकारादि की भेट प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया—"हे चक्रवर्तिन्! मैं आपके राज्य की दक्षिण सीमा का सरक्षक आपका किकर वरदाम् तीर्थ कुमार देव आपकी अधीनता स्वीकार करता हू।"

वरदाम तीर्थाधिपदेव का अष्टाह्निक महामहोत्सव मनाने के अनतर महाराज भरत ने अपने चक्ररत्न का अनुगमन करते हुए सदलबल सिधु नदी की साधना के लिये प्रयाण किया। सिन्धु देवी के भवन के पास पहुचकर

वहा अपनी सेना का स्कन्धावार डाला। तदनन्तर पौषधशाला में तेले की तपश्चर्या का प्रत्याख्यान कर सिन्धु देवी का आराधन प्रारम्भ किया। अष्टम भक्त की तपस्या के पूर्ण होते होते सिन्धु देवी का आसन प्रकम्पित हुआ। अपने आसन के दोलायमान होने का कारण जानने हेतु जब सिन्धु देवी ने अवधिज्ञान का उपयोग किया तो उसे ज्ञात हुआ कि इस भरत क्षेत्र के प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती श्री भरत महाराज षट्खण्ड की साधना के अभियान में यहां अपने चक्ररत्न और दलबल के साथ आये हुए हैं। अपने परंपरागत जीताचार के अनुसार मुझे भी बहुमूल्य दिव्य भेंट लेकर उनकी सेवा में उपस्थित हो उनकी अधीनता स्वीकार करनी चाहिये। इस प्रकार संकल्प कर सिन्धु देवी १००८ रत्नजटित कुम्भकलश, भांति भांति के दुर्लभ मणिरत्नों से जटित दो स्वर्णिम भद्रासन, भुजबंध आदि अनेक आभरण लेकर महाराज भरत की सेवा में उपस्थित हो उन्हें निवेदन करने लगी–''हे देवानुप्रिय! आपने भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त की है, मैं आपके अधिकार क्षेत्र में रहने वाली आपकी किंकरी हूं, अतः आप भेंट स्वरूप मेरा यह प्रीति प्रदान स्वीकार कर मुझे अनुग्रहित करें।''इस प्रकार सिन्धु देवी की साधना के अनंतर महाराज भरत ने तेले के तप का पारणक करने के पश्चात् अपने अधीनस्थों को सिन्धु देवी का अष्टाहिनक महामहोत्सव मनने का आदेश दिया।

अष्टाह्निक महोत्सव के अवसानानतर चक्ररत्न ने धरातल और नभोमण्डल को अपने विविध दिव्य वाद्ययत्रो के कर्णप्रिय घोष से गुजरित करते हुए ईशान कोणस्थ वताढ्यपर्वत की ओर आकाश मार्ग से प्रयाण किया। हस्तिस्कन्धाधिरूढ भरत अपनी अजेय विशाल वाहिनी के साथ चक्ररत्न द्वारा प्रदर्शित पथ पर अग्रसर होते हुए मार्गस्थ सभी प्रदेशो पर अपनी विजय वैजयन्ती फहरा, विजित नरेश्वरो से भेट स्वीकार करते हुए पडाव पर पडाव डालते हुए अन्ततोगत्वा वैताढ्यगिरिराज की दक्षिणी तलहटी मे आये। सद्य निर्मित स्कन्धावार मे सेना का पडाव डालने के अनतर महाराज भरत ने पौषधशाला मे पौषध पूर्वक अष्टम भक्त तप का प्रत्याख्यान कर वैताढ्यगिरी कुमार देव का आराधन प्रारभ किया। आराधन के साथ तेले के तप के पूर्ण होते होते वैताढ्यगिरि कुमार देव का आसन प्रकम्पित हो उठा। अवधिज्ञान के उपयोग से यह ज्ञात होते ही कि जबू द्वीप भरत क्षेत्र के इस अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती महाराज भरत षट्खण्ड की साधना के अभियान मे अग्रसर हो अपनी विशाल वाहिनी के साथ चक्ररत्न द्वारा प्रदर्शित पथ पर बढते हुए यहा पधारे हैं। विगत, आगत और अनागत वैताढ्यगिरी कुमार देवो के जीताचार के अनुसार मुझे भी भरत को भेट करने के लिये अभिषेक योग्य अलकार ककण, भुजबध, वस्त्र आदि ले उनकी सेवा मे उपस्थित होना चाहिये। इस प्रकार के निश्चय के

अनंतर वैताढ्यगिरि कुमार देव अभिषेक योग्य दिव्य वस्त्रालंकारादि ले द्रुत देवगति से महाराज भरत की सेवा में उपस्थित हुआ और उन्हें हाथ जोड़ निवेदन करने लगा–"हे देवानुप्रिय! आपने भरतक्षेत्र पर विजय प्राप्त की है। मैं भी आपके राज्य में रहने वाला आपका आज्ञाकारी सेवक हूं अतः मेरी ओर से यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर मुझे कृतार्थ कीजिये।"

भेंट स्वीकार करने के साथ-साथ महाराज भरत ने वैताढ्यगिरी कुमार देव का समुचित सत्कार-सम्मान किया और मधुर वार्तालाप के अनंतर उसे विदा किया। तत् पश्चात पूर्ववत् वैताढ्यगिरी कुमार देव का भी अष्टाह्निक महामहोत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। महोत्सवानंतर चक्ररत्न ने आयुधशाला से निकल दिव्य सुमधुर वाद्ययंत्रों के कर्णप्रिय निनाद से असीम अंतरिक्ष को गुंजरित करते हुए गिरिराज वैताढ्य की दक्षिणी तलहटी से पश्चिम दिशा की तिमिस्र गुफा की ओर प्रयाण किया। यह देख महाराज भरत के हर्ष का पारावार न रहा। उन्होंने अपने अभिषेक हस्ति-रत्न पर सजाई हुई देव विमानोपम अम्बावारी में विराजकर अपनी सेना के साथ गगनगामी चक्ररत्न का पृथ्वीतल पर चलते हुए अनुसरण किया। इस प्रकार प्रयाण करते हुये वें तिमिस्र गुफा के समीप पहुंचे। सेना के स्कन्धावार के अनंतर पौषधशाला में अष्टमभक्त का प्रत्याख्यान कर दर्भासन पर बैठ महाराज भरत ने कृतमाल देव का

आराधन प्रारभ किया। अष्टम तप का अवसान होते-होते अवधिज्ञान के उपयोग से कृतमाल देव को ज्ञात हुआ कि प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्री भरत क्षेत्र के विभिन्न राज्यो पर अपनी विजय वैजयन्ती फहराते हुये यहा आये हैं। भूत, वर्तमान और भावी कृतमाल देवों के सहज पारपरिक जीताचार के अनुसार कृतमाल देव भी भरत चक्री के भावी स्त्री रत्न के लिये तिलकादि चौदह प्रकार के आभरण वस्त्रालकारादि लेकर महाराज भरत की सेवा मे समुपस्थित हो निवेदन करने लगा— "देवानुप्रिय! मैं आपके राज्य का निवासी हू। आपका आज्ञाकारी किकर कृतमाल देव हू, अत आपके भावी स्त्री रत्न के लिये दिव्य तिलकादि १४ प्रकार के आभरण और उच्च कोटि के वस्त्रालकार मेरी ओर से भेंट स्वरूप स्वीकार कीजिये।"

अपनी अधीनता स्वीकार करने वाले कृतमाल दव का भरत महाराज ने समुचित मधुर सभाषण से सत्कार सन्मान करने के अनतर उन्हे सादर विदा किया। और अपने अधिकारियो, सैनिको एव प्रजाजनो को कृतमाल देव का अष्टाह्निक महामहोत्सव हर्षोल्लास पूर्वक मनाने का आदेश दिया। कृतमाल देव के अष्टाह्निक महामहोत्सव के सानन्द अवसान के अनतर महाराज भरत ने अपने सेनापति रत्न सुखसेन को बुलाकर सिहल, बर्बर, अतिरमणीय अग देश, यवनद्वीप, मणिरत्नो एव स्वर्ण भडारो से भरपूर अरब देश अरखण्ड पखर,

कालमुख, यवनक, उत्तर दिशा मे वैताढ्य पर्वत पर्यंत सभीदेशों, नैऋत्य कोण के देशों और सिन्धु नदी से समुद्र पर्यंत सभी देशों पर विजय प्राप्त करने का आदेश दिया। सेनापति सुखसेन ने चक्रेश्वर भरत के आदेश को शिरोधार्य कर उसका अक्षरशः पालन किया। चक्रवर्ती के चर्मरत्न से सेनापति ने अपने दलबल के साथ सिन्धु नदी को पारकर उपरोक्त सब देशों पर चक्रवर्ती भरत की विजय वैजयन्ती फहराते हुए उन देशों के अधिपतियों से महार्घ्य मणिरत्नों एवं स्वर्ण भंडारों की भेंट प्राप्त की।

अपने समय के सर्वोत्कृष्ट कलाकार नटराज आषाढ़-भूति ने अपनी वैक्रिय लब्धि के बल पर चर्मरत्न से चक्रवर्ती की सुविशाल चतुरंगिनी सेना को पार करने का जो दृश्य रंगशाला में प्रस्तुत किया, उसको देखकर तो वहां समुपस्थित बड़े बड़े राजा महाराजाओं से लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि सभी वर्गों के दर्शकों के आश्चर्य का पारावार न रहा। मगधाधिराज की हर्षानु-भूति एवं गौरवानुभूति का यथार्थ चित्रण न वाणी के वश की बात थी और न लेखनी के ही। भरतेश्वर की षट्खण्ड साधना के दृश्यों को दर्शक यथाशक्ति यथासंभव अधिकाधिक समय पर्यंत सांस रोके अपलक विस्फारित नेत्रों से तन्मय हो देख रहे थे।

उपर्युक्त सब देशों के क्षितिज में भरतेश्वर की विजय पताका फहराने, वहां के अधिनायकों को महाराज भरत के आज्ञाकारी अधीनस्थ किंकर बनाकर और उनसे

महाराज भरत के लिये बहुमूल्य, स्वर्णाभरण, रत्नजटित अलकारों एव अनेक जाति के अनमोल, अलभ्य मणिरत्नो के भडार भेंट रूप मे स्वीकार कर सेनापति सुखसेन सदलबल चर्मरत्न पर आरुढ़ हो सिन्धु महानदी को पार करते हुए महाराज भरत की सेवा में लौटे। बहुमूल्य स्वर्ण रत्नों के भण्डार महाराज भरत की सेवा में प्रस्तुत करते हुए साञ्जलि शीर्ष झुका उन्होने निवेदन किया— "चक्रेश्वर महाराज! आपके आदेशानुसार सिन्धु नदी और लवण सिन्धु के कतिपय भागो को पार कर सिहल, अरब आदि आपके द्वारा निर्दिष्ट सभी देशो के राजाओ पर विजय प्राप्त कर उन देशो पर आपकी विजय वैजयन्ती फहरा दी गई है। स्वामिन्! उन सभी देशो के अधिपतियो ने आपकी अधीनता एव किंकरता स्वीकार करते हुए महार्घ्य मणिरत्नो, रत्नजटित स्वर्णाभूषणों एव हिरण्य सुवर्ण आदि के अमित भडार भेट किये हैं, जो आपकी सेवा मे प्रस्तुत हैं।"

महाराज भरत ने भेट मे प्राप्त मणिरत्नादि के विपुल भण्डारो की ओर दृष्टि निपात करते हुए अपने सेनापति-रत्न सुखदेव का समुचित सम्मान कर उसके उत्साहोल्लास का सवर्द्धन किया। तदनतर सुखदेव को सादर विदा करते हुए चतुरंगिणी सेना को कतिपय दिनो के लिये विश्राम करने का आदेश दिया। आमोद प्रमोद के साथ कतिपय दिनो तक सब के विश्राम कर लेने के अनतर एक दिन महाराज भरत ने अपने सेनापति रत्न

सुखदेव को बुलाकर तिमिस्र गुफा के दक्षिण द्वार के कपाटों को खोलने का आदेश दिया। अपने स्वामी चक्रधर भरत की आज्ञा को शिरोधार्य कर सेनापति सुखसेन ने तेले की तपश्चर्या के साथ कृतमाल देव की आराधना की। अष्टमभक्त की तपश्चर्या के अनन्तर स्नानोपरान्त वस्त्राभरणों से सुसज्जित हो धूप, पुष्पमाला आदि हाथों में ले सेनापति सुखसेन तिमिस्र गुफा के द्वार के पास पहुंचा। अनेक ईसर, तलवर, माण्डलिक, सार्थवाह और मंगल कलश लिये देश-विदेश से समागत दासियों के समूह सेनापति का अनुसरण कर रहे थे। पिहित कपाटों के पास पहुंचते ही सेनापति सुखसेन ने मयूर पिच्छ से उनका सर्वप्रथम परिमार्जन किया, तदनंतर विशुद्ध जलधारा से कपाटों का प्रक्षालन कर सेनापति ने गोषीर्श चंदन के लेप से अपनी हथेली सहित पांचों अंगुलियों को उस लेप से प्रलिप्त कर कपाटों पर गोषीर्श चंदन के छापे लगाये तत्पश्चात गंध, माला, आदि से उन्होंने कपाटों की अर्चना की। इस प्रकार अर्चना के पश्चात् सुखसेन सेनापति ने कपाटों के सम्मुख जानु प्रमाण पुष्पों का ढेर लगाया और कपाटों पर वस्त्र का आरोपण किया। तदनंतर स्वच्छ अच्छ रजतमय सुकोमल चावलों से कपाटों के समक्ष आंगण में अष्टमांगलिकों का आलेखन किया। पुनः वहां जानु प्रमाण पुष्पों का ढ़ेर कर सुखसेन ने चक्रवर्ती महाराज भरत के दण्डरत्न को धूप

निवेदित किया। यह सब कुछ कर लेने के अनतर सेनापति सुखसेन ने शत्रुओं का विनाश करने मे सक्षम, चक्रवर्ती की सेना के मार्ग को समतल, सुन्दर और सुगम, समर्थ एव सशक्त से सशक्त शत्रुओं की सेनाओं का सहज ही मे सामुहिक सहार करने मे सुनिपुण, चक्रवर्ती के अभीप्सित सभी मनोरथों को तत्काल पूर्ण करने वाले तथा रत्नमय मूठ वाले, वज्रनिर्मित दण्ड रत्न को अपने दोनो हाथो से कसकर पकडा। इसी स्थिति मे सात आठ डग उलटे पाव सरककर और पुन विद्युत् वेग से आगे की ओर बढते हुए उन कपाटो पर क्रमश दूसरी बार और तीसरी बार भीषण प्रहार किये। तीसरे प्रहार के साथ ही तिमिस्र प्रभा गुफा के पिहित कपाट घोर घरघरारव करते हुए उद्घाटित हो गये। प्रलय कालीन घनघटा मे कडकडाती हुई विद्युत् के पृथ्वी आकाश और पाताल को एक ही साथ प्रकम्पित कर देने वाले वज्रपात के समान सेनापति द्वारा कपाटो पर किये गये प्रहारो के कर्णवेधी निर्घोष के आषाढभूति द्वारा प्रदर्शित दृश्य को देखकर सभी दर्शको के हृदय धक्धक् करने लगे।

तिमिस्र गुफा के द्वारो को उद्घाटित करने के अनतर सेनापति सुखसेन ने तलवर आदि विशिष्ट जनो के साथ महाराज भरत की सेवा में समुपस्थित हो तिमिस्र गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाटो को उद्घाटित करने का सुसवाद निवेदित किया। इस सुसवाद को सुनते ही चक्रवर्ती भरत

के हर्ष का पारावार न रहा। उन्होंने सेनापति को समुचित पारितोषिक व प्रीतिदान आदि से सम्मानित किया। उधर उसी समय चक्ररत्न आयुधशाला से बाहर निकला और गगन-मण्डल को अपने दिव्य वाद्ययंत्रों की स्वर लहरियों के समान सम्मोहक मधुर घोष से गुन्जरित करता हुआ तिमिस्र गुफा के दक्षिणी द्वार की ओर नभोमण्डल में अग्रसर हुआ। यह देखते ही महाराज भरत ने अपने सेनापति रत्न को आदेश दिया कि चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध कर चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए प्रयाण करें। उसी समय महाराज भरत का हिमगिरी गौरपट्टहस्ती रत्नजटित स्वर्ण की अंबावारी से सुसज्जित किया जाकर हस्तिशाला के अधिपति द्वारा वहां प्रस्तुत किया गया। जिस प्रकार उदीयमान अरुण वरुण रोहण-गिरी पर आरुढ़ होते हैं, ठीक उसी प्रकार महाराज भरत भी उस गिरिवर शिखरोपम श्वेत हस्ती पर अम्बावारी में आरुढ़ हुये। उन्होंने चार अंगुल लंबे और दो अंगुल चौड़े अपने श्रेष्ठ मणिरत्न को अभिषेक पट्टहस्ती के दक्षिणी कपोल पर धारण करवाया। एक हजार देवता इस मणिरत्न की सेवा में अहर्निश समुद्यत रहते थे। उसकी अगणित महत्ताओं में आत्यन्तिक महत्व की विशेषताएं थीं कि (१) इसे मस्तक पर धारण करने वाला सदा यौवन सम्पन्न, सुखी, स्वस्थ और परम प्रसन्न रहता। (२) उस पर किसी भी प्रकार के शस्त्रास्त्र का प्रहार नहीं होता।

(३) देव, मनुष्य और तिर्यञ्च द्वारा उपस्थित किये गये किसी भी प्रकार के उपसर्ग कभी उसका पराभव तो क्या, किंचित् मात्र भी अनिष्ट करने मे सक्षम नही होते (४) उस मणिरत्न को शिरपर धारण करने वाला सदैव सर्वावस्थाओ मे पूर्णरूपेण अभय ही रहता।

इस प्रकार के मणिरत्न से विभूषित हस्तिरत्न पर आरूढ महाराज भरत ने गगन को गुजरित एव गिरिगह्वरो को प्रतिध्वनित कर देने वाले जयघोषो के वीच अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ तिमिस्र गुफा मे प्रवेश किया। घोर अधकार से आपूरित तिमिस्र प्रभा गुफा मे भरत इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे मानो पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र प्रलयकालीन काली काली सघन घन घटाओ के घटाटोप मे प्रवेश कर रहा हो। गुफा मे प्रवेश करते ही अपने काकिणी रत्न को हाथ मे लिया, जो चार अगुल ऊचा तथा उतना ही लबा और चोडा तथा तोल मे आठ स्वर्ण पट्टिकाओ के बराबर भार वाला था। जहा सूर्य, चाद और तारे भी कभी प्रकाश नही कर पाते थे, वहा महाराज भरत द्वारा काकिणी रत्न के हाथ मे लिये जाते ही कालरात्रि की भांति निबिडतम अधकार से ओत प्रोत तिमिस्र गुफा बारह योजन पर्यंत प्रकाश से जगमगा उठी। गुफा मे प्रवेश करने के अनतर महाराज भरत ने उस गुफा की पूर्वी और पश्चिमी दोनो भित्तियो पर एक-एक योजन के अतर से काकिणी रत्न से

चन्द्रमण्डल के समकक्ष आकार वाले मण्डलों का आलेखन किया? उन मण्डलों के प्रभाव से सम्पूर्ण गुफा में चारों ओर दिन के समान प्रकाश व्याप्त हो गया। उस प्रकाश में चक्रवर्ती की सेना बड़ी ही सहज सुगमता से आगे की ओर बढ़ती ही गई। उस काकिणी रत्न में अनेक अतिविशिष्ट गुण थे। जिनमें आत्यंतिक महत्व के गुण थे–(१) उस काकिणी रत्न को धारण करने वाले व्यक्ति पर स्थावर अथवा जंगम किसी प्रकार के विष का कभी किञ्चित् मात्र भी प्रभाव नहीं होता। (२) संसार में जितने भी मान-उन्मान हैं, उन सब का सही ज्ञान काकिणी रत्न से तत्काल सहज हो जाता। (३) जहां भी काकिणी रत्न विद्यमान रहता, वहां कृष्ण पक्ष की अंधकार पूर्ण रात्रि में भी दिन सदृश प्रकाश होता।

भरत अपनी सुविशाल चतुरंगिणी वाहिनी के साथ तिमिस्र गुफा का आधा मार्ग ही पार कर पाये थे कि उनके समक्ष दो बड़ी ही भयाविनी महानदियां आईं। एक का नाम था–उन्मग्नजला महानदी और दूसरी निमग्नजला महानदी। पहली नदी में तृण, पत्र, काष्ट, कंकर, पत्थर, हाथी, घोड़ा, रथ, योद्धा अथवा मनुष्य यदि गिरता तो वह उसे तीन बार घुमाकर बाहर पृथ्वीतल पर फेंक देती थी। इसके विपरीत दूसरी नदी भीतर गिरी हुई उपरिवर्णित वस्तुओं में से किसी भी वस्तु को, पशु, पक्षी अथवा मनुष्य को तीन बार घुमाकर अपने गहनतम तल में सदा

के लिये डुबो देती थी। ये दोनों महानदिया उस गुफा की प्राची दिशा की भित्ति से निकलकर पश्चिम दिशा की सिन्धु महानदी में मिल गई थी।

महाराज भरत ने अपने वार्द्धिक रत्न को बुलाकर आदेश दिया कि उन दोनो नदियो पर अनेक शत स्तम्भो के अवलबन से युक्त अचल, अकम्प, अभेद्य स्वर्णरत्नमय सुदृढ ऐसे पुल बनाओ जिनपर से हस्ति सेना, अश्वसेना, रथ सेना और पदाति सेना सभी प्रकार की सुख-सुविधा के साथ सुगमतापूर्वक गमनागमन कर सके। वार्धिक रत्न ने चक्रवर्ती की आज्ञा को शिरोधार्य कर — देखते ही देखते दोनो महानदियो पर भरतेश्वर की कल्पना के अनुसार सुविशाल, सुदृढ सेतुओ का निर्माण कर दिया। अपनी सेना के साथ उस सुदृढ सेतु के माध्यम से दोनो भयकर महानदियो को पार कर महाराज भरत गुफा के उत्तरी द्वार की ओर अग्रसर हुए। उनके उत्तरी द्वार के समीप पहुचते ही कपाट कडकड-चडचड निनाद के साथ स्वत उद्घाटित हो गये। सेना सहित गुफा पार कर महाराज भरत ने आगे के क्षेत्र पर अपनी विजय वैजयन्ती फहराने हेतु प्रयाण किया।

भरत क्षेत्र के उस उत्तरार्ध विभाग मे उस समय आपात नामक चिलात (म्लेच्छ) जाति के लोग रहते थे। वे लोग बडे ही समृद्ध, तेजस्वी एव बलशाली थे। वे सुविशाल एव सुविस्तीर्ण भव्य भवनो मे निवास करते

थे। उन लोगों के पास गृह, शैया, सिंहासन, रथ, घोड़े, पालकी आदि का प्राचुर्य था। उनके भंडार स्वर्ण, रत्न, रजत आदि से परिपूर्ण थे। अशन, पान, खादिम आदि सामग्रियों से उनके कोष्ठागार भरे पड़े थे। उनके पास दास, दासी और पशु धन का भी प्राचुर्य था। वे सब लोग बड़े ही वैभवशाली, बलिष्ठ, हृष्ट, पुष्ट, शूरवीर मनुष्यों में अपराभूत, अजेय, उद्भट योद्धा और संग्राम में अमोघ लक्ष्यवेधी थे।

जिस समय महाराज भरत ने षट्खण्ड की साधना के लिये अपनी विशाल सशक्त चतुरंगिणी सेना के साथ प्रयाण किया, उसी समय से उन आपात जाति के चिलातों के देश में अकाल मेघ गर्जन, वज्रपात, अकाल में ही वृक्षों पर फल पुष्पादि का उत्पन्न होना, नभोमण्डल में प्रेत-प्रेत्यों के नृत्य जैसे दृश्यों का दृष्टिगोचर होना आदि-आदि अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे।इस प्रकार के अप्रत्याशित उपद्रवों को देखकर वे आपात नामक **चिलात** बड़े ही चिंतित, दुःखित, आर्तध्यान में निरत, सदाशोक निमग्न रहने के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ बन गये थे।

जिस समय महाराज भरत की सुविशाल चतुरंगिणी सेना की अग्रिम टुकड़ियां उन आपात चिलातों के देश में आगे की ओर बढ़ रही थीं, उस समय उन्हें देखते ही उन आपात चिलातों के क्रोध का पारावार न रहा। रणभेरियों

के सांकेतिक निनाद के माध्यम से कुछ ही क्षणो मे शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित एव सन्नद्ध वे आपात चिलात लोग टिड्डी दल की भाँति महाराज भरत की सेना की अग्रिम पंक्तियो पर टूट पडे। सहस्रो की सख्या मे अकस्मात् हुये इस चारो ओर के भीषण आक्रमण को देखकर चक्रवर्ती की सेना की अग्रिम टुकडियो के सैनिको ने भी प्रहारो के उत्तर मे शत्रुओ पर भीषण प्रतिप्रहार करना प्रारभ किया। दोनो ओर से भीषण युद्ध हुआ, किन्तु अग्रिम पंक्तियो के सैनिको की सैनिक सख्या सीमित और शत्रुओ की सख्या उनसे सहस्रो गुणा अधिक एव अपरिमेय होने के कारण अग्रिम पंक्तियो के अनेक योद्धा रणभूमि मे वीरगति को प्राप्त हुये, अनेक आहत हुये, और शेष सैनिक उन युद्धशोण्डीर आपात-चिलातो से पराजित हो दिशा-विदिशाओ मे पलायन कर गये।

जब सेनापति-रत्न सुखसेन को चरो द्वारा यह सूचना मिली कि उनकी सेना की अग्रिम टुकडियों को इस देश के चिलातो ने पूर्णत पराजित कर दिया है, अनेक योद्धाओ को मौत के घाट उतार दिया गया है, अनेक योद्धा भीषण रूप से आहत हुये हैं और शत्रु की अजेय शक्ति एव अपरिमेय सेना को देखकर अग्रिम टुकडियो के अनेक योद्धा इधर उधर पलायन कर चुके हैं, तो सेनापति के क्रोध का पारावार न रहा। उनके कमलायत विशाल लोचन लाल-लाल हो आग उगलने लगे। उनकी

दन्तावली की कड़कड़ाहट से घनघटा की गड़गड़ाहट के बीच विद्युत् की चमचमाहट के साथ कड़कड़ाहट का सा दृश्य उपस्थित हो गया।

इन्द्र के अश्वरत्न उच्चैश्रवा से स्पर्धा करने वाले अपने कमल मेल नामक अश्वपर आरुढ़ हो एक सहस्र देवों द्वारा अहर्निश सेव्यमान खड्गरत्न भरतेश्वर महाराज भरत से लेकर अपने चुने हुये योद्धाओं के साथ उन आपात चिलातों पर उसी प्रकार झपटे जिस प्रकार गरुड़ सर्प समूह पर झपटता है। उन्होंने विद्युत् वेग से किये गये खड्गरत्न के भीषण प्रहारों से कुछ ही क्षणों में बड़े बड़े योद्धाओं को धराशायी कर दिया। देखते ही देखते खड्गरत्न के प्रहारों से हत-आहत एवं क्षत-विक्षत हो आपात-चिलातों की सेना पलायन के लिये बाध्य हो गई, और अन्ततोगत्वा ऐसी भगदड़ मची कि आपात चिलातों की सम्पूर्ण सेना चारों ओर भाग खड़ी हुई। रंणागण में एक भी जीवित आपात-चिलात दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। चक्रवर्ती के जयघोष के बीच विजयी सेनापति सुखसेन अपने सैन्यदल में लौट आये।

अतिशय अहंमानी आपात-चिलातों को इस अप्रत्याशित पराजय से ऐसी आत्मग्लानि हुई कि वे सब मृत्यु का वरण करने के अपने दृढ़ संकल्प के साथ सिन्धु नदी के तट पर एकत्र हुये। उन्होंने सामूहिक रूप से सिन्धु नदी के तटवर्ती प्रदेश की बालुका में बालुकाके ही

सस्तारक बनाये और अपने वस्त्रो को उतार कर उन सस्तारको पर चित्त लेट गये। अष्टमभक्त के सामूहिक तपश्चरण के साथ उन्होने अपने कुल देवता मेघ मुख नामक नाग कुमार देवो का सामूहिक रूपेण स्मरण करना प्रारभ किया। मध्याह्न की चिलचिलाती धूप मे और रात्रि की ठिठुरा देने वाली ठड मे भी उनका अपने कुलदेवो का आराधन अनवरत रूपेण चलता रहा। मेघ मुख नागकुमार देवो के आसन जब इस सामूहिक एकाग्र मना आराधन से प्रकम्पित हुये तो उन्होंने उसका कारण जानने के लिये अवधिज्ञान का उपयोग किया। अपने भक्त आराधको को इस प्रकार की विपन्नावस्था मे देखकर उन देवो ने तत्काल परस्पर मत्रणा की और सर्वसम्मत निर्णय के अनुसार वे सब उन आपात-चिलातो के पास आये जो नग्नावस्था मे लेटे हुये उनका स्मरण कर रहे थे। प्रमुख मेघ मुख नागकुमार ने आकाश मे अवस्थित अपने साथी देवो की ओर इगित करने के साथ उन आपात-चिलातो को उच्च स्वर मे सबोधित करते हुए कहा—"हे देवानुप्रियो। तुम लोग इस दशा मे जिनका स्मरण कर रहे हो, वे हम ही तुम्हारे कुल देवता मेघ मुख नामक नाग कुमार हैं। कहो— हम तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य, अभीष्ट कार्य करे?" आपात-चिलातो के मुखिया ने हाथ जोडकर निवेदन करना प्रारभ किया—"हमारे देश मे हमारी स्वतत्रता को छीनने के लिये कोई

मृत्युकामी, निर्लज्ज विशाल सेना के साथ आततायी बन कर आया है। उसके सेनापति ने हम पर भीषण आक्रमण कर हमारे प्रमुख योद्धाओं को धराशायी और अनेकों को क्षतविक्षत-आहत कर हम सबको पराजित कर दिया है। उस आततायी की शक्ति बड़ी ही आश्चर्यकारी और अपराजेय है। उस आततायी से हमारी और हमारे देश की रक्षा करो। अपने देश की रक्षा का और कोई उपाय न देख कर हमने आपका स्मरण किया है। आप हमारे कुल देवता हैं अतः हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि—आप उस आततायी को मारकर, उसकी सैन्य शक्ति को छिन्न-भिन्न कर, दिशा विदिशाओं में भगाकर, उस आततायी को ऐसा कड़ा दण्ड दो कि फिर वह कभी भूलकर भी हमारी इस प्राण प्यारी मातृभूमि की ओर दृष्टिनिपात तक न कर सके।"

अपने उपासक आपात-चिलातों की बात सुनकर मेघमुख नामक नागकुमारों ने कहा "—हे देवानुप्रियो! वस्तुस्थिति यह है कि इस अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती महाराज भरत षट्खण्ड की साधना के लिये दिग्विजय करते हुये यहां आये हैं, वे चक्रवर्ती सम्राट् हैं, कोई भी देव, दानव, अथवा बड़ी से बड़ी शक्ति का धनी न तो इन पर किसी प्रकार के शस्त्र का प्रयोग कर सकता है, न मंत्र प्रयोग और न किसी प्रकार की अन्य शक्ति का ही। वे अपराजेय हैं। भरत क्षेत्र के छःहों खण्डों पर अपना स्वामित्व स्थापित कर अपनी विजय वैजयन्ती फहराने

से उन्हे कोई नही रोक सकता। इस प्रकार की वास्तविक स्थिति होते हुये भी तुम लोगो की प्रीति और भक्ति के कारण हम चक्रवर्ती महाराज भरत को उपसर्ग पहुचाने का प्रयास करेगे।"

अपने भक्तो को इस प्रकार आश्वस्त कर, मेघ मुख नाग कुमारो ने वैक्रिय समुद्घात से मेघ का वैक्रिय कर चक्रवर्ती भरत के सैन्य शिविर पर घनघोर मेघ घटा से घोर गर्जन एव हृदयद्रावी तडित् की कडक सहित मूसल द्वय अथवा मुष्टिद्वय प्रमाण जल-धाराओ से निरन्तर सात दिन की वर्षा प्रारभ की। अपनी सर्वत्र विजय पाने वाली सेना पर इस प्रकार की भीषण अनवरत वृष्टि देख महाराज भरत ने चर्मरत्न हाथ मे लिया। भरत के कर स्पर्श मात्र से वह चर्मरत्न तत्काल बारह योजन विस्तार वाला बन गया। अपनी विशाल सेना के साथ महाराज भरत उस चर्मरत्न पर आरुढ हुये और छत्ररत्न से निन्यानवे हजार नौ सो स्वर्णमय ताडियो वाला, नि छिद्र अर्जुन नामक श्वेत स्वर्ण के वस्त्र से ढका हुआ अत्यत सुन्दर मणियो एव रत्नो से मण्डित स्वर्णमय सुपुष्ट दण्ड वाला एक हजार देवताओ द्वारा सेवित बारह योजन से अधिक विस्तार वाला छत्र निर्मित किया। वह छत्ररत्न से निर्मित छत्र भरत चक्री द्वारा समस्त सेना पर वितानित कर दिया गया।

छत्र के वितान के अनतर भरत ने अपना मणिरत्न छत्र

के मध्यभाग में रख दिया, जिससे कि बारह योजन की परिधि में दिन के प्रकाश के समान प्रकाश व्याप्त हो गया। गाथापति रत्न उस चर्मरत्न पर सभी प्रकार के धान्य, फल फूलों से लदे वृक्ष, मसाले, सब्जियां, आदि आदि सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुयें प्रतिदिन की आवश्यकता से भी अधिक मात्रा में उत्पन्न करने लगा और इस प्रकार अति सुविशाल सेना के किसी भी सदस्य को किसी भी प्रकार का किंचित् मात्र भी कष्ट नहीं हुआ। जब सात अहोरात्र व्यतीत हो जाने पर भी वर्षा मुसलद्वय धारा से अनवरत रुपेण बरसती ही रही, क्षणमात्र के लिये भी बंद होना तो दूर रञ्चमात्र भी कम नहीं हुई तो महाराज भरत के मन में इस प्रकार का संकल्प विकल्प उत्पन्न हुआ "—अकाल में ही मृत्यु की कामना करने वाला यह निष्पुण्य, निर्लज्ज, निःश्रीक दुष्ट कौन है जो मेरी सेना पर सात अहोरात्र से युगमुष्टि-युगमुशल प्रमाण वर्षा कर रहा है?" उनके मन में उत्पन्न हुये इस प्रकार के अध्यवसायों को अवधिज्ञान से जानकर उनके सान्निध्य में रहने वाले सोलह हजार देव दिव्य कवच, दिव्य आयुधादि मे सुसज्जित हो मेघमुख नागकुमारों के पास पहुंचे और उन्हें ललकारते हुये कहने लगे "ओ अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाले ह्री-श्री-विहीन मेघ मुख नाग कुमारो! तुम सात दिन से यह अविवेक पूर्ण अनर्थ कर रहे हो, अब इसी क्षण यहां मे पलायन कर जाओ

अन्यथा हम तुम्हे मारेंगे।"

सोलह हजार शक्ति शाली देवो की यह फटकार सुनते ही वे नाग कुमार देव भयत्रस्त हो कापने लगे। उन्होने तत्काल मेघो का साहरण किया और वहा से भाग खडे हुये। उन मेघमुख नाग कुमारो ने उन आपात-चिलातो के पास जाकर कहा—"चक्रवर्ती भरत की सेवा मे सोलह हजार देव अहर्निश उद्यत रहते हैं। हमने कष्ट पहुचाने का अपनी ओर से यथा शक्य भरसक प्रयास किया, किन्तु उन पर तिल मात्र भी प्रभाव नही हुआ। अत हम तुम लोगो को यही सलाह देते हैं कि उन अजेय महान् शक्तिशाली भरत महाराज की सेवा मे शीघ्रातिशीघ्र उपस्थित हो उनका आधिपत्य स्वीकार कर लो।"

"जो आज्ञा" कहते हुये वे आपात-चिलात सिन्धु नदी के तट से उठ कर अपने अपने घरो की ओर प्रस्थित हुये और नाग कुमार देव अपने भवनो की ओर। स्नान-विलेपनानतर सुदर किन्तु भीगे वस्त्रो को धारण कर, रत्नादि अनेक बहुमूल्य भेट लेकर खुले बालो वे आपात-चिलात महाराज भरत की सेवा मे समुपस्थित हुये और निवेदन करना प्रारभ किया "—हे विजयी नरेन्द्र! हम सब आपकी शरण मे हैं, आपकी सदा जय विजय हो, चिरकाल तक आप हमारे स्वामी रहे। पूर्व पश्चिम और दक्षिण इन तीन दिशाओ मे लवण समुद्र पर्यंत और उत्तर दिशा मे चुल्लहिमवत पर्यंत आपका

एक छत्र निष्कंटक साम्राज्य है। उत्तरार्ध भरत और दक्षिणार्ध भरत दोनों को मिलाकर सम्पूर्ण भरत क्षेत्र पर आपकी विजय वैजयन्ती फहराये, आपकी अखण्ड आज्ञा प्रवर्तित रहे। हम लोग आपके देश में, आपकी आज्ञा में रहने वाले आपके आज्ञाकारी किंकर हैं। आप हमारे स्वामी हैं। अविचार के कारण हम लोगों से आपका जो घोर अपराध हो गया है, उसके लिये हम **लज्जानुभूति** के साथ आपसे क्षमायाचना करते हैं। हे क्षमासागर महाराज भरत! हमारे उस अक्षम्य अपराध को क्षमा करो। भविष्य में हम कभी इस प्रकार का धृष्ठता पूर्ण अपराध नहीं करेंगे।" भेंट स्वीकार व सत्कार-सम्मान के अनंतर आपात-चिलातों को विदा करते हुये महाराज भरत ने कहा—"अब तुम लोग अपने-अपने घर जाओ और मेरे आश्रय में सदा निर्भय एवं सुखपूर्वक रहो।"

आपात चिलातों को विदा करने के पश्चात् चक्रवर्ती ने अपने सेनापति रत्न को बुलाकर पूर्व में सिन्धु, दक्षिण में वैताढ्य गिरी, पश्चिम में लवण समुद्र और उत्तर में चुल्लहिमवंत पर्वत पर्यंत सिन्धु नदी के दूसरे खण्ड के सभी राज्यों को जीतकर उनमें चक्रवर्ती की अखंड आज्ञा प्रवर्तित करने का आदेश दिया। सेनापति रत्न सुखसेन ने चक्रवर्ती की अतिविशाल एवं अजेय सेना के साथ विजय अभियान प्रारंभ कर उन समग्र राज्यों को विजित एवं चक्रवर्ती की आज्ञा में अवस्थित किया। उन प्रदेशों के नरेश्वरों ने सेनापति-रत्न के समक्ष भरत चक्रवर्ती के

लिये अनमोल रत्नजटित स्वर्णाभूषणो एव अन्यान्य दुर्लभ महार्घ्य वस्तुओ की भेट प्रस्तुत करते हुए कहा—"सेनापते! हम सब महाराज भरत के वशवर्ती, उनके राज्य मे रहने वाले परम आज्ञाकारी अनुचर हैं। हमारी तरफ से यह भेट स्वीकार कीजिये।" सेनापति-रत्न ने उन सभी देशो के राजाओ द्वारा प्रस्तुत की गई भेट को ग्रहण कर उन्हे मृदुवचनो से आल्हादित एव आश्वस्त कर विदा किया और स्वय अपनी सेना के साथ चक्रवर्ती महाराज भरत की सेवा मे लौट आये। उन्होने महाराज भरत की सेवा मे विजित राज्यो के राजाओ द्वारा प्रस्तुत की गई भेट समर्पित करते हुए निवेदन किया—

"राजाधिराज! राज राजेश्वर! आपकी आज्ञा का सेवक द्वारा अक्षरश पालन कर लिया गया है।" महाराज भरत ने विजय के सुसवाद को सुनकर अतीव प्रसन्नता का अनुभव किया और समुचित सत्कार सम्मान के साथ सेनापति-रत्न को विदा किया। तदनतर चक्ररत्न आयुधशाला से बाहर निकला और गगन पथ से ईशान कोण मे चुल्लहिमवत नगाधिराज की ओर अग्रसर हुआ। अपनी सेना के साथ गगन-गामी चक्ररत्न का धरातल पर अनुसरण करते हुए महाराज भरत चुल्लहिमवत पर्वत के समीप पहुचे। सेना के लिये स्कन्धावार, अपने लिये विशाल प्रासाद एव पौषधशाला का वार्धिक रत्न से निर्माण करवा महाराज भरत

पौषधशाला में पहुंचे। वहां दर्भासन पर बैठकर पौषध सहित अष्टमभक्त तप का प्रत्याख्यान कर उन्होंने चुल्लहिमवंत कुमार देव की साधना के लिये उसका आराधन प्रारंभ किया। षट्खण्ड की साधना हेतु महाराज भरत का यह सातवां अष्टम भक्त था।

अष्टम भक्त की तपस्या के सम्पन्न होने के अनंतर महाराज भरत अश्वरथ पर आरूढ़ हो सेना सहित चुल्लहिमवंत पर्वत के समीप आये। अपने रथ से उन्होंने तीन बार उस पर्वत का स्पर्श किया। तत्-पश्चात् रथ को रोककर अपने धनुष पर शर का संधान किया। और मागध तीर्थपति देव की साधना के समय जिस प्रकार के वाक्य कहे थे, उन्हीं वाक्यों के उच्चारण के अनंतर अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को आकर्णान्त खींच कर बाण छोड़ा। वह बाण बहत्तर योजन ऊपर जाकर चुल्लहिमवंत गिरी कुमार देव के भवन में गिरा। पहले तो बाण को देखकर देव को बड़ा ही भयंकर क्रोध आया। किन्तु जब बाण को उठाकर देखा और उस पर भरत का नाम अंकित पाया तो देव का क्रोध तत्काल शांत हो गया। भेंट प्रस्तुत करने के साथ-साथ चक्रवर्ती के आधिपत्य को अंगीकार करना, भूत वर्तमान और भविष्य के चुल्लहिमवंत कुमार देवों का जीताचार समझ अद्भूत् औषधियों, राज्याभिषेक योग्य पुष्प माला, गोशीर्ष चन्दन, अनेक प्रकार के रत्न आभरण-अलंकार एवं पंचद्रह का पानी आदि भेंट हेतु लेकर तत्काल त्वरित-तम गति से भरत की सेवा में

उपस्थित हो निवेदन करने लगा। —"हे देवानुप्रिय! आपने चुल्लहिमवत वर्षधर पर्यत उत्तर दिशा पर विजय प्राप्त की है। मैं आपके देश मे रहने वाला आपका ही परमाज्ञाकारी किकर एव आपके राज्य की उत्तर सीमा का प्रतिपालक देव हू। इस भेट मामग्री को स्वीकार कर दास को कृतार्थ कीजिये।'

महाराज भरत ने भेट स्वीकार के अनतर चुल्लहिमवत गिरी कुमार देव का सत्कार-सम्मान कर विदा किया। उसी समय भरत ने अपने रथ को पीछे की ओर घुमाया और वे ऋषभकूट पर्वत के पास आये। चुल्लहिमवत की ही भाति उन्होने ऋषभकूट पर्वत का भी तीन वार रथ से स्पर्श किया और रथ को रोका उन्होने काकिणी रत्न से ऋषभकूट पर्वत के पूर्व दिशा की ओर के कडखे अर्थात् पार्श्व के गगन-चुबी शिला पट्ट पर निम्नलिखित अभिलेख लिखा—

"इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरक के पश्चिम विभाग मे "मैं भरत नाम का चक्रवर्ती हू। मैं भरत क्षेत्र का अधिपति प्रथम राजा एव नरवरेन्द्र हू। मेरा कोई प्रतिशत्रु नही है। मैंने इस भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त की है।" अभिलेख के आलेखानतर स्कन्धावार मे अवस्थित अपनी उपस्थान शाला मे लौट स्नानादि के पश्चात् उपस्थान शाला मे राजसिहासन पर आरुढ हो भरतेश्वर ने अपनी प्रजा को कर आदि से मुक्त कर चुल्लहिमवत

गिरी कुमार देव का अष्टाह्निक महोत्सव मनाने का आदेश दिया।

उस महामहोत्सव के सम्पन्न होते ही चक्ररत्न नभोमार्ग से दक्षिण दिशा में वैताढ्य पर्वत की ओर प्रस्थित हुआ। महाराज भरत ने अपनी सेना के साथ चक्ररत्न का अनुसरण किया। वैताढ्य गिरिराज के उत्तरी नितम्ब में पहुंचने पर वहां सेना का पड़ाव डाला महाराज भरत ने नमि और विनमि विद्याधर राजाओं की साधना के लिये पौषधशाला में पौषध के साथ तेले की तपश्चर्या की। तप के पूर्ण होते-होते दोनों विद्याधर राजा परस्पर मिले और परस्पर विचार विमर्श के पश्चात् अपने जीताचारानुसार भरत की अधीनता स्वीकार करने के निश्चय के साथ भेंट लेकर वे दोनों महाराज भरत की सेवा में उपस्थित हुए। विद्याधरों की दक्षिण श्रेणी के राजा नमी वस्त्राभूषण तथा उत्तर श्रेणी के राजा विनमि ने देवांगनाओं को भी रूप लावण्य में तिरस्कृत कर देने वाली अनिन्द्यसुन्दरी सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न भरत को भेंट करने हेतु द्रुततम गति से भरत की सेवा में उपस्थित हुए। उन दोनों ने भरत चक्रवर्ती की अधीनता स्वीकार करते हुए लाई हुई भेंट प्रस्तुत की।

महाराज भरत ने विद्याधर राज नमि और विनमि द्वारा निवेदित की गई भेंट को स्त्रीरत्न सुभद्रा के साथ स्वीकार किया। दोनों विद्याधर बंधुओं का समुचित सत्कार-

सम्मान करने के अनतर महाराज भरत ने उन्हे विदा किया और अपने प्रमुख अधिकारियो एव प्रजाग्रणियो को वुलाकर नमि और विनमि दोनो विद्याधर राजाओ का अष्टाह्निक महोत्सव मनाने का आदेश दिया।

अपने चक्रवर्ती सम्राट् की आज्ञा का अक्षरश सहर्ष पालन करते हुये अधिकारियो, सैनिको एव प्रजाजनो ने आठ दिन तक उत्तम अशन, पान, नृत्य, सगीत, नाटक आदि आनद प्रदायी सुखोपभोगो का उपभोग कर वडे ही हर्षोल्लास पूर्वक, भगवान् ऋषभदेव के साथ प्रव्रजित हुये कच्छ और महाकच्छ राजाओ के राज कुमार विद्याधर राजा नमि और विनमि का अष्टाह्निक महोत्सव मनाया।

अष्टाह्निक महोत्सव के सानद सम्पन्न होते ही चक्ररत्न आयुधशाला से निकल ईशान कोण मे अवस्थित गगा देवी के भवन की ओर अग्रसर हुआ। अपने समग्र दलवल के साथ गगनमार्ग से बढते हुये चक्ररत्न का पृथ्वीपटल पर अनुगमन करते हुये महाराज भरत गगा नदी के समीप पहुचे। चक्ररत्न के वहा रुकते ही महाराज भरत ने स्कन्धावार, राजभवन और पौषधशाला आदि का वार्धिकरत्न से निर्माण करवाया। चक्ररत्न आयुध-शाला मे प्रविष्ट हुआ और महाराज भरत पौषधशाला मे। उन्होने कुशासन पर बैठकर पौषध सहित अष्टम भक्त का प्रत्याख्यान किया। और तत्काल वे एकाग्र मन

से गंगा देवी की उपासना करने में प्रवृत्त हुये। चक्रवर्ती भरत के इस नौंवे अष्टम भक्त के सम्पन्न होते ही तत्काल गंगा देवी रत्नों से भरे एवं भांति-भांति के चित्ताकर्षक चित्रों से चित्रित १००८ विचित्र कुम्भ कलश और मणिरत्नादि से जटित दो स्वर्ण सिंहासन भरत को भेंट करने हेतु साथ लिये उपस्थित हुई। गंगा देवी ने हाथ जोड़कर भरत से निवेदन किया—

"देवानुप्रिय! आपने भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त की है। मैं आपके राज्य में रहने वाली आपकी आज्ञापरायणा किंकरी हूं। अतः मेरी ओर से यह भेंट स्वीकार कर कृतार्थ कीजिये।" महाराज भरत ने वह भेंट स्वीकार की। समुचित सत्कार-सम्मान के पश्चात् गंगा को विदा करने के अनंतर स्नान, पारणक आदि से निवृत्त हो महाराज भरत ने अठारह श्रेणी-प्रश्रेणियों के लोगों को बुलाकर उन्हें अनेक प्रकार की सुविधायें प्रदान कीं और गंगा नदी का अष्टाह्निक महोत्सव मनाने की आज्ञा दी।

गंगादेवी के अष्टाह्निक महामहोत्सव के सम्पन्न होते ही चक्ररत्न आयुधशाला से निकल कर गगन मण्डल में अग्रसर होता हुआ गंगा नदी के पश्चिमी तट से दक्षिण दिशा में अवस्थित खण्ड प्रपात की ओर बढ़ा। खण्ड प्रपात गुफा के पास सेना के पड़ाव डालने के साथ ही महाराज भरत ने पौषधशाला में प्रविष्ट हो पौषध के साथ अपने दशवें अष्टमभक्त का प्रत्याख्यान किया और

खण्डप्रपात गुफा के अधिष्ठायक देव नैत्यमाल की आराधना मे प्रवृत हुए। तप के सम्पन्न होते ही नैत्यमाल देव भी कृतमाल देव की ही भांति भरत की सेवा मे उपस्थित हुआ और उसने हाथ जोडकर निवेदन किया—

"हे देवानुप्रिय! आपने भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त की है, मैं भी आपके राज्य मे रहने वाला आपका आज्ञाकारी किंकर हू। अत मेरी यह भेट स्वीकार कर, मुझे कृतार्थ कीजिये।" यह कहते हुए नैत्यमाल देव ने अलकार करने योग्य ककणादि रत्नजटित आभूषणों आदि से परिपूर्ण अनेक भाण्ड करण्ड आदि भरत को भेट किये। भेट को स्वीकार करने के अनतर नैत्यमाल का समुचित सत्कार सम्मान कर महाराज भरत ने उसे आदर सहित विदा किया। तत्पश्चात् पौषधशाला से उपस्थान शाला मे स्नान, मज्जन, गध, विलेपन एव वस्त्राभरणालकारादि से निवृत्त हो महाराज भरत ने अपने दशवे तेले का पारणा किया। तदनतर सेनापति रत्न सुखसेन को बुलाकर महाराज भरत ने आदेश दिया—"जिसकी सीमा पश्चिम से गगा नदी, पूर्व मे लवण समुद्र, दक्षिण मे वैताढ्यगिरी और उत्तर मे चुलूलहिमवत गिरि है, उस समस्त लघु खण्ड के सम-विशम आदि समग्र भूभागो पर मेरी ओर से अधिकार कर और वहा के शासको से उत्तमोत्तम रत्नादि की भेट लेकर शीघ्र लौटो।" सेनापति-रत्न ने भरतेश्वर की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपनी

सुविशाल सेना के साथ निर्दिष्ट लघु खण्ड की ओर प्रस्थान कर उस पर स्वल्प समय में ही विजय प्राप्त कर ली। उस लघु खण्ड के सभी अधीनस्थ राजाओं से बहुमूल्य रत्नाभरणों आदि की भेंट ले सेनापतिरत्न अपनी सेना के साथ महाराज भरत की सेवा में लौटे और रत्नराशि आदि की भेंट अपने सम्राट् के समक्ष प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया—

"देव! उस सम्पूर्ण लघुखण्ड के सभी राजाओं को आपका आज्ञाकारी अनुचर बनाकर उनसे प्राप्त हुई भेंट के साथ यह किंकर आपकी सेवा में उपस्थित है।" महाराज भरत ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए सेनापति रत्न का सम्मान कर भेंट स्वीकार की।

अब तक न केवल सुविशाल भारत देश में ही अपितु भारत के पार्श्ववर्ती एवं सुदूरवर्ती द्वीपों, महाद्वीपों एवं विभिन्न देशों में आषाढ़भूति द्वारा प्रदर्शित किये जा रहे उच्चकोटि के आश्चर्यकारी नाटक की और सूत्रधार के अलौकिक चमत्कारकारी कलाकौशल की ख्याति आठों दिशाओं विदिशाओं के अन्तिम छोर तक पहुंच चुकी थी। चारों ओर से बड़ी ही उत्कंठा के साथ उस अद्भुत नाटक को देखने के लिये राजगृह नगर में आने वालों का तांता लग रहा था। उन लोगों के आवास, अशन, पानादि की व्यवस्था में मगधेश्वर ने किसी भी प्रकार की

निधि-रत्नों की प्राप्ति के परिणाम स्वरूप अपार धन वैभव के स्वामी बने महाराज भरत ने नौ निधि-रत्नो का अष्टाह्निक महामहोत्सव मनाने का आदेश दिया।

महानदी गगादेवी के अष्टाह्निक तुल्य महामहोत्सवके सम्पन्न होने पर महाराज भरत ने अपने सेनापति रत्न को बुलाकर उन्हे गगा महानदी के पूर्ववर्ती लघुखण्ड जिसकी पश्चिमी सीमा गगा, पूर्वी तथा दक्षिणी सीमा लवणसागर और उत्तरी सीमा वैताढ्य पर्वत है—पर उनकी विजय वैजयन्ती फहरा वहा के सभी नरेश्वरो को चक्रवर्ती की अधीनता स्वीकार करवा, उनसे महार्घ्य रत्नाभूषणादि की भेट ले शीघ्र ही उनके समक्ष उपस्थित होने की आज्ञा प्रदान की। अपने स्वामी श्री भरत महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य कर सेनापति सुखसेन अपनी शक्तिशाली सेना के साथ उस लघु खण्ड मे पहुचा और वहा के सभी शासको को चक्रवर्ती महाराज भरत की अधीनता स्वीकार करवाने के साथ साथ उनसे बहुमूल्य रत्नो, रत्नजटित अतीव सुन्दर स्वर्णाभरणो आदि-आदि अनेक दुर्लभ एव अद्भुत् वस्तुओ की प्रचुर मात्रा मे भेट स्वीकार कर महाराज भरत की सेवा मे लौटा। उस खण्ड के राजाओ की ओर से प्राप्त भेट महाराज भरत के समक्ष प्रस्तुत करते हुये सेनापति ने उन्हे गगा महानदी के पूर्ववर्ती लघुखण्ड पर विजय की शुभ सूचना निवेदित की। महाराज भरत ने प्रसन्न हो

सेनापति का समुचित सत्कार-सम्मान किया।

तत्पश्चात् एक दिन प्रथम चक्रेश्वर का चक्ररत्न आयुधशाला से निकलकर सुविशाल गगन मण्डल को सभी भांति के दिव्य वाद्य यंत्रों की सम्मोहक स्वरलहरियों के समान कर्णप्रिय घनरव गंभीर रव से गुंजरित करता हुआ आकाश मार्ग से भरतेश्वर की ओर अग्रसर हुआ। यह देखकर महाराज भरत अतीव तुष्ट हुये। वे सुसज्जित ऐरावतोपम अपने अभिषेक हस्ती पर आरुढ़ हो सम्पूर्ण दल-बल एवं नवनिधियों आदि के साथ विनीता नगरी की ओर अग्रसर हुये।

शैलेन्द्र की शिला के समान विशाल वक्षस्थल पर झूमती हुई हारावलियों से सुरेन्द्र के समान शोभायमान दिग्दिगन्त में लब्धप्रतिष्ठ, सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के एक छत्र सम्राट् नरेश्वर भरत चक्ररत्न द्वारा प्रदर्शित पथ पर कल्लोलित सागर की लोल लहरों के समान कल-कल निनाद करती हुई सेना तथा जनसमूह के साथ ग्राम नगर आदि को उलांघते एवं एक-एक योजन के अन्तर पर पड़ाव डालते हुए एक दिन विनीता नगरी के पास आ पहुंचे। नगरी के बाहर बारह योजन लंबे, नौ योजन चौड़े स्कन्धावार और महाराज भरत के लिए आवास एवं पौषधशाला का निर्माण वार्धिक रत्न ने मुहूर्त मात्र में ही सम्पन्न कर दिया।

तदनंतर महाराज भरत ने पौषधशाला में प्रवेश कर

विनीता नगर के अधिष्ठायक देव की आराधना हेतु पौषध सहित तेले का तप किया। तेले के तप के पूर्ण होने पर महाराज भरत ने पौषधशाला से उपस्थान शाला मे प्रवेश किया। स्नान विलेपनादि के अनतर उन्होने दिव्य वस्त्राभूषणो एव अलकारो से सुसज्जित हो विनीता प्रवेश हेतु अभिषेक हस्ती पर आरोहण किया। उनके सम्मुख दोनो पार्श्वो और पीछे की ओर अनुक्रमश अष्टमगल, चौदहरत्न, सोलह हजार देव, बत्तीस हजार मुकुटधारी महाराजा और विशाल जनसमूह गगनभेदी जयघोषो से धरातल और गगन मण्डल को गुजाता हुआ चलने लगा। नौ महानिधियो और सुविशाल चतुरंगिनी सेना ने विनीता नगरी मे प्रवेश नही किया।

नव वधू समान सुश्रृगारित विनीता नगरी के राजपथो पर अग्रसर होते हुये महाराज भरत पर दोनो ओर से सम्पूर्ण वायुमण्डल को सुगन्धित बना देने वाले अबीर, गुलाल एव पुष्पो की अनवरत वृष्टि हो रही थी। दोनो पार्श्व के अति सुदर अति विशाल गगन चुबी भवनो की चित्र विचित्र चित्रो से सुशोभित अट्टालिकाओ पर महार्घ्य वस्त्रालकारो से सुसज्जित सुरबालाओ को भी तिरस्कृत कर देने वाली सुहागिने सुमधुर मगल गीतो एव स्वागत गानो से दिग्मण्डल को गुजरित करती हुई अपने रत्न जटित स्वर्ण ककणो से अलकृत दोनो हाथो से एक साथ ही अबीर, गुलाल एव पुष्पो की वर्षा कर रही थी। इस

प्रकार अगाध आनंदोदधि की उत्ताल तरंगों पर जन-जन और स्वयं को झुलाये हुये निखिल भरत क्षेत्र के एक-छत्राधिपति भरत चक्रवर्ती अपने भव्य राजभवन के अतीव सुंदर अवतंसक द्वार पर आये। हाथी के हौदे से उतर कर उन्होंने अनुक्रमशः सोलह हजार देवों, ३२ हजार मुकुट धारी राजाओं, सेनापति रत्न, गाथा पति रत्न, वार्धिक रत्न, पुरोहित रत्न, अठारह श्रेणियों, अठारह ही श्रेणियों आदि आदि का समुचित सत्कार सम्मान करते हुये उन्हें विसर्जित किया। तत्पश्चात् अपने स्त्री रत्न सुभद्रा के साथ ३२ हजार ऋतु-कल्याणिकाओं, ३२ हजार ही जनपद कल्याणिकाओं तथा ३२ हजार नाटक सूत्रधारिकाओं के परिवार सहित अपनें गगन चुम्बी विशाल राज प्रासाद में प्रवेश किया। वहां अपने आत्मीयों, मित्रों, स्वजनों संबंधियों एवं परिजनों से साक्षात् कर उनका कुशल-क्षेम पूछा, तत्पश्चात स्नानादि से निवृत्त हो, भोजन शाला में प्रवेश कर आपने बारहवें अष्टमभक्त का पारणक किया। तंत्पश्चात् अपने निजी कक्ष में प्रवेश कर वहां विविध वाद्य यंत्रों की ध्वनियों, तालों और स्वर लहरियों के साथ पूर्णतः ताल मेल रखने वाले नृत्यसंगीत और ३२ प्रकार के नाटकों का आनंद लूटते हुये अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम सुखोपभोगों का उपभोग करने लगे।

इस प्रकार अनेक दिनों तक प्रबल पुण्योदय से प्राप्त

होने वाले प्रतिदिन नवीनतम भोगोपभोगो का उपभुञ्जन करते हुये महाराजाधिराज भरत मन ही मन विचार करने लगे कि मैंने अपने बल-वीर्य, पौरुष और पराक्रम के द्वारा चुल्लहिमवत पर्वत से लवण समुद्र पर्यंत सम्पूर्ण भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त की है। अत अब अपना महाभिषेक करवाना मेरे लिये श्रेयष्कर होगा।

महाराज भरत के अन्तर्मन मे उद्भूत हुये सकल्प को अवधिज्ञान के बल से जानकर उनकी सेवा मे सदा तत्पर रहने वाले सोलह हजार देव उनके समक्ष उपस्थित हुये और उन्होने साञ्जलि शीष झुका भरत की सेवा मे निवेदन किया—"हे देवानुप्रिय! आपने अपने प्रचण्ड बाहुबल और पुण्य प्रताप से सम्पूर्ण भरत के छहो खण्डो पर विजय प्राप्त की है। आप छहो खण्डो के निष्कटक महान् साम्राज्य के एकछत्र सम्राट् हैं। आपका चक्रवर्ती पद पर महाराज्याभिषेक किया जाना परमावश्यक है किन्तु यह शाश्वत नियम है कि जब तक चक्रवर्ती का चक्ररत्न आयुधशाला मे प्रवेश कर अपने समुचित स्थान पर अवस्थित न हो तब तक राज्याभिषेक नही किया जा सकता।

चक्ररत्न के आयुधशाला मे प्रविष्ट न होने का एक मात्र यही कारण है कि आपने भरत क्षेत्र के छहो खण्डो पर अपनी विजय वैजयन्ती फहराकर उन पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया है किन्तु आपके बाहुबली

आदि ९९ सहोदरों ने, जिन्हें भगवान् ऋषभदेव ने अपने महाभिनिष्क्रमण से पूर्व पृथक् पृथक्शः राज्यों का स्वामित्व प्रदान किया था। उन आपके ९९ भ्राताओं में से अभी तक किसी एक ने भी आपकी अधीनता स्वीकार नहीं की है। जब तक आपके वे सभी भाई वचन मात्र से भी अधीनस्थ नहीं हो जाते, तब तक आपका चक्ररत्न आयुधशाला में प्रविष्ट नहीं होगा। चक्ररत्न के आयुधशाला में प्रविष्ट न होने का सीधा सा अर्थ है कि आपने अभी तक सम्पूर्ण भरतक्षेत्र पर विजय प्राप्त नहीं की है। इस स्थिति में आपका चक्रवर्ती के सिंहासन पर महाभिषेक तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि चक्ररत्न आयुधशाला में प्रविष्ट न हो।

अपनी सेवा में अहर्निश उपस्थित रहने वाले देवों की इस बात को सुनकर महाराज भरत सम्पूर्ण स्थिति को समझ गये। उन्होंने अपने पुरोहित—रत्न को बुलाकर आदेश दिया कि वह बाहुबली आदि उनके लघु भ्राताओं के पास पृथक् पृथक् दूत भेज कर उन्हें इस बात से सहमत कर ले कि वे वाङ्मात्र से ही अपने बड़े भाई का आदर रखते हुये अधीनता स्वीकार कर लें। उनके राज्य पर उनका जो एकाधिपत्य है, उसमें तथा उनकी स्वतंत्रता में किञ्चित् मात्र भी कोई अन्तर नहीं आयेगा। पुरोहित रत्न ने भरतेश्वर की आज्ञा को शिरोधार्य कर बाहुबली आदि अन्य निन्यानवें राजाओं के पास अति

विनम्र एव प्रियभाषी कुशल दूतो को महाराज भरत की इच्छा के अनुरूप उनकी अधीनता स्वीकार करवाने का सदेश भेजा।

दूतो के पहुचने पर वाहुवली से छोटे शख से लेकर प्रभञ्जपर्यन्त ९८ वे ही भाई परामर्श हेतु एकत्रित हुये और वे भरत को अपनी ओर से किस प्रकार का सदेश भेजा जाय, इस विषय मे निर्णय नही कर सके। अत वे सभी तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की सेवा में समुपस्थित हुए। उन्होने प्रभु को विधिवत् वदन करने के पश्चात् निवेदन करना प्रारभ किया—"प्रभो। आपनें भरतादि हम सब भाइयो को पृथक्-पृथक् राज्य प्रदान किये। भैया भरत ने सम्पूर्ण भरत के छ हो खण्डो पर विजय प्राप्त कर अपनी राज्य की सीमाओ का दिग्दिगन्त तक विस्तार कर दिया है। यह सब कुछ कर लेने के उपरान्त भी उनकी राज्यविस्तार की भूख अभी तक शान्त नही हुई है। अब वे हम ९९ वे ही भाइयो के राज्य पर अधिकार कर लेना चाहते हैं।"

वीतराग प्रभु ऋषभदेव ने भौतिक राज्य एव ऐहिक भोगोपभोगो की नश्वरता पर प्रकाश डालते हुए उन्हे उपदेश किया कि वे राज्य पाट एव पारिवारिक जनो का परित्याग कर श्रमण धर्म मे प्रव्रजित हो जाये। निष्ठापूर्वक निर्दोष प्रव्रज्या के पालन से वे मोक्ष रूपी अलौकिक महोत्तम साम्राज्य के सम्राट् हो जायेगे। वह मोक्ष का

साम्राज्य अक्षय, अव्याहत एवं शाश्वत है।

प्रभु के उपदेशों से शंख विश्वकर्मा आदि उन अठ्यानवें ही भाइयों ने संसार से विरक्त हो प्रभु की चरण शरण में प्रव्रजित हो निरतिचार श्रामण्य के परिपालन द्वारा कर्म समूह को ध्वस्त करना प्रारंभ किया। भरत को जब अपने शंख आदि ९८वें भ्राताओं के प्रव्रजित होने की सूचना मिली तो वे तत्काल उनके पास गये और उन्हें पुनः राज्य ग्रहण करने का अनेक बार आग्रह किया। किन्तु भोगों से पूर्णतः विरत हुए ९८ वें भाई समभाव पूर्वक अपने निश्चय पर अटल रहे। कुछ ही समय के पश्चात् घोर तपश्चरण की हुताश से चार घनघाती कर्मों को मूलतः भस्मसात् कर लोकालोक प्रकाशी केवल ज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त कर लिया। वे ९८ भाई संसार की समस्त चराचर वस्तुओं के त्रिकालवर्ती भावों के युगपत् दृष्टा एवं ज्ञाता बन गये। उधर जब महाराज बाहुबली के पास चक्रवर्ती महाराज भरत का दूत पहुंचा तो उन्होंने दूत की पूरी बात सुनने के पश्चात् भरत को उसी दूत के साथ निम्नलिखित संदेश भिजवाया–

"आदरणीय अग्रजन्मा!

शतशः प्रणामानंतर निवेदन है कि विश्ववन्द्य हमारे तात श्री ने हम सब भाइयों में राज्य का पृथक्-पृथक् वितरण कर दिया था। तब से ही हम निन्यानवें भाई तो पिता श्री द्वारा प्रदत्त राज्य से ही पूर्णतः सन्तुष्ट चले आ

रहे हैं। आपके मन मे पिता द्वारा प्रदत्त राज्य को अभिवृद्ध करने की लालसा जागृत हुई और आपने दिग्विजय अभियान प्रारभ किया। न केवल आर्यावर्त पर ही अपितु भरत क्षेत्र के शेष पाच खण्डो पर भी अपना अधिकार स्थापित करने के लिये आपने विषमातिविशम, दुर्गमाति-दुर्गम मार्गों को पार करते हुए अपने अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन ससार के समक्ष प्रदर्शित कर उन पाचो खण्डो पर भी अपना एक छत्र सामाज्य स्थापित कर लिया। हमे अपने अग्रज की इस सफलता और अद्भुत शौर्य से प्रसन्नता ही है। दु ख है तो केवल इस बात का कि राज्य-वृद्धि की आपके अन्तर्मन मे उत्पन्न हुई भूख अतिविशाल क्षेत्र पर अपना निष्कटक शासन स्थापित कर लेने के अनतर भी बुझी नही है। और अपनी उस भूख को शान्त करने के लिये पिता श्री द्वारा प्रदत्त अपने पुत्र तुल्य अनुजो के राज्यो पर भी अधिकार कर लेने के लिये पूर्णत कटिबद्ध हो रहे हैं। आपकी इस राज्य-वृद्धि की भूख से मेरे ९८वे अनुजो को पिता श्री द्वारा प्रदत्त राज्यो का परित्याग कर श्रमण-धर्म मे दीक्षित होना पडा है। आप स्वय अपने मन से ही पूछिये कि वत्सतुल्य अपने अनुजो के राज्यो के हडप लेने की आपकी यह भूख कही अन्याय की परिधि मे तो नही आती? अस्तु, आप अपनी इच्छानुसार, जो आपको अच्छा लगे, उसे करने मे स्वतत्र हैं। किन्तु मैं आपको यह सूचित कर देना चाहता हूँ कि

आपके लघु भ्राता बाहुबली की बाहुओं में अभी इतना बल है कि वह अपने ९८ अनुजों की भांति अपने बड़े भैया की अलौकिक शक्ति से भयभीत हो अथवा अपने पिता श्री द्वारा प्रदत्त अधिकारों का हनन करने वाले भैया के प्रति युद्ध जैसी अभद्रता के प्रदर्शन को समुचित न समझ अथवा बड़े भाई के प्रति अनादर समझकर चुपचाप प्रव्रजित हो जायेगा। अच्छा तो यही होगा कि हम दोनों पिता श्री द्वारा प्रदत्त हमारे अधिकारों में एक-दूसरे का हस्तक्षेप करने जैसी कोई अन्यायपूर्ण त्रुटि न करें। इन सब तथ्यों पर शांत मन से चिंतन कर लेने के उपरान्त भी यदि आप बाहुबली के पिता द्वारा प्रदत्त राज्य को अपनी अधीनता में कर लेने के हठ पर अड़े हुए हों तो आपका यह छोटा भाई बड़ी विनम्रता के साथ रणांगण में आपका स्वागत करेगा।"

अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध का निमंत्रण देने की प्रक्रिया की केवल पूर्ति हेतु ही बाहुबली की राज्य सभा में कतिपय सदस्यों ने भरत के दूत से कहा—"ओ भरत के दूत! हमारे देश में जूते की पैताम को भरत कहा जाता है।"

महाराज भरत का दूत महाराज बाहुबली को प्रणाम कर अपना सा मुंह ले तत्काल विनीता नगरी की ओर प्रस्थित हुआ। तदनन्तर दूत ने महाराज भरत की सेवा में उपस्थित हो बाहुबली द्वारा प्रेषित संदेश यथावत् अपने स्वामी के समक्ष निवेदित किया।

महाराज भरत वडी दुविधा में फस गये।अपने ९८वे अनुजों के अपने ही कारण दीक्षित हो जाने का उन्हे बडा दु:ख था। अपने भाई बाहुबली को अपना अधीनस्थ राजा बनाने में भी उनके अन्तर्मन मे वस्तुत कोई रुचि नही थी। किन्तु अधीनता की औपचारिकता के सम्पन्न हुए विना चक्ररत्न विनीता नगरी मे प्रविष्ट नही हो रहा था। और इस प्रकार षट्खण्ड की विजय मे ६० हजार वर्ष की अवधि तक किया गया सभी अथक श्रम व्यर्थ जा रहा था। यह उनके लिये एक दुविधा भरी चिता का विषय बन गया।

उन्होने अपने अतीव वाक् कुशल, मृदुभाषी, विनम्र एव कठिन से कठिन कार्य को भी सहज ही सुचारुरूपेण सम्पन्न कर देने की क्षमता के धनी दूत को भेजकर अपने परम प्रिय लघु भ्राता महाराज बाहुबली को इस बात पर सहमत करने के लिये प्रयास किया कि चक्ररत्न को विनीता नगरी की आयुधशाला मे प्रविष्ट कराने के लिये केवल वचन मात्र से उन्हे महाराज भरत की अधीनता स्वीकार करना अनिवार्य है। यदि ऐसा नही किया गया तो चक्ररत्न कदापि विनीता नगरी मे प्रवेश नही करेगा। उसके परिणामस्वरूप भगवान् ऋषभदेव के विश्व-विख्यात परमप्रतापी इक्ष्वाकुवश मे प्रथम चक्री पद के धारक का अभाव इक्ष्वाकुवश मे होने वाले प्रत्येक क्षत्रिय के हृदय मे पीढियो तक खटकता रहेगा। महाराज भरत ने

अपने उस परम कुशल दूत के माध्यम से महाराज बाहुबली को इस बात का वचन देते हुए उन्हें आश्वस्त करने का प्रयास किया कि पिता श्री द्वारा प्रदत्त राज्य में अथवा बाहुबली के अधिकारों में चक्रवर्ती की ओर से कभी किसी भी प्रकार का किञ्चित् मात्र भी हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा।

किन्तु मान-धनी, महाबली महाराज बाहुबली ने यह कहते हुए महाराज भरत के सभी संधि प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया कि पिता श्री ने जब मुझे पृथक् एवं स्वतंत्र राज्य का अधिकारी बनाया है, मुझे शासक के सभी प्रकार के सार्वभौम अधिकार प्रदान किये हैं और मैं अपने आपको स्वतंत्र राजा अनुभव करता हूँ तो वचन मात्र से भी महाराज भरत की अधीनता स्वीकार कर क्यों आत्मप्रवञ्चना करूँ? इस प्रवञ्चना से तो क्षात्र धर्मनिष्ठ हम दोनों भ्राताओं के लिये अधीनता स्वीकार करवाने में रणांगण ही समुचित स्थान होगा।

भावी को कौन टाल सकता है। दोनों भाइयों में युद्ध ठना। दोनों ओर की विशाल सेनायें शक्ति परीक्षण के लिये युद्ध भूमि में सम्मुख आ डटीं। दोनों ओर से युद्ध के लिये पूरी तैयारियां हो चुकी थीं। रणभेरियां बज चुकी थीं। शंखनाद भी पूर दिये गये थे। योद्धाओं की करमुष्टिकायें भी अपने-अपने शस्त्रों पर प्रबल पकड़ कर चुकी थीं। ठीक उसी समय महाराज बाहुबली ने

आगे की ओर बढकर अपने जेष्ठ भ्राता भरत को घनरव गभीर स्वर मे सबोधित करते हुए कहा—"तात! मैं आपकी अधीनता स्वीकार करू अथवा न करू यह हम दोनो भ्राताओ का ही प्रश्न है, और इस प्रश्न का हल हम दोनो को ही करना चाहिये। ऐसी दशा मे दोनो ओर से युद्ध के लिये रणागण मे आये हुए इन योद्धाओ के प्राणो का बलिदान मुझे न तो युक्तिसगत ही प्रतीत होता है और न न्यायसगत ही। मैं समझता हूँ आप भी यही अनुभव कर रहे होगे?"

भरत—"प्रिय भ्रात! अनुभव तो मैं भी यही कर रहा हूँ। पर इसके अतिरिक्त और मार्ग क्या हो सकता है?"

बाहुबली—"क्यो न हम दोनो भाई ही परस्पर युद्ध से जय,पराजय का निर्णय कर ले।"

भरत—"यही श्रेष्ठ है।"

दोनो महाबली भ्राताओ के बीच मतैक्य होने पर उन दोनो मे १ दृष्टि युद्ध २ वाक् युद्ध ३ बाहु युद्ध ४ मुष्टि युद्ध एव ५ दड युद्ध—ये पाच द्वन्द्व युद्ध प्रारभ हुए। सर्वप्रथम दृष्टि युद्ध हुआ। दृष्टि युद्ध का नियम यह है कि दो प्रतिद्वन्द्वी एक-दूसरे पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर अपलक दृष्टि से देखते रहे, जिस योद्धा की आखो मे इस युद्ध के समय पानी आ जाय अथवा झपक जाय उसी की पराजय समझी जाती है। भरत और बाहुबली ने परस्पर एक-दूसरे पर अपनी-अपनी दृष्टि केन्द्रित की। पर इस

युद्ध में बाहुबली की विजय और भारत के संपूर्ण छः खण्डों के बड़े से बड़े योद्धाओं पर विजय प्राप्त कर लेने वाले महाराज भरत की पराजय हुई। तदनंतर दोनों भाइयों के बीच वाक् युद्ध प्रारंभ हुआ—वाक् युद्ध का यह नियम है कि दोनों प्रतिद्वन्द्वी क्रमशः घोर सिंहनाद करते हैं। जो प्रतिद्वन्द्वी कानों के पर्दे फाड़ देने वाले घोर निर्घोष को सहन न कर सकने के कारण हठात् अपने दोन्नों कर्णरन्ध्रों में अंगुलियाँ डाल ले, उसकी पराजय और जो घोरातिघोर निर्घोष से किन्चित् मात्र भी प्रकम्पित न हो, अंगुलियों को कानों में डालना तो दूर अपनी आजानु भुजाओं को किंचित् मात्र भी हिलाये-डुलाये नहीं, उसकी जय मानी जाती है। वाक् युद्ध में बाहुबली ने भरत से कहा—

—''महाराज! आप मेरे बड़े भाई हैं, पहले आप ही वाक् युद्ध प्रारंभ कीजिये।''

षट् खण्ड विजयी महाराज भरत ने अपनी पूरी शक्ति के साथ घनघोर सिंहनाद किया। प्रलय - कालीन घन घटाओं की कड़क से भी अति कठोर कण्ठरव में महाराज भरत के इस सिंहनाद से दशों दिशायें प्रकम्पित हो उठीं। गगन मण्डल फटने लगा, धरा धूजने लगी, गगनचुम्बी पर्वतों की श्रेणियां डगमग डोलने लगीं। बाहुबली के अतिरिक्त वहां उपस्थित सभी योद्धाओं ने और सेनापतियों तक ने अपने कर्णरन्ध्रों में अंगुलियां डाल लीं। चक्रवर्ती

भरत के इस प्रबल पौरुष को देखकर सभी समुपस्थित जन विस्मित हो विस्फारित नेत्रों से महाराज भरत की ओर देखते ही रह गये। अधिकाश लोगो की यह धारणा वन गई कि इस युद्ध मे महाराज भरत की ही जय होगी। किन्तु ज्योही महावली वाहुवली ने सिह गर्जना प्रारभ की, वहा उपस्थित अनेक लोग, अनेको योद्धा पछाड खा धडाम से धरती पर गिर गये। सबने अपनी अगुलियो से ही नही किन्तु हथेलियो से अपने कर्णरन्ध्रो को मूद लिया। पृथ्वी, आकाश और पाताल उस सिह गर्जना की प्रतिध्वनि से पूरित हो फटने से लगे। डगमग डोलते हुए अनेक गिरि-राजो के शिखर स्खलित हो धरा की धूल चाटने लगे।

महाराज भरत ने स्वय को सुस्थिर रखने का प्रयास करने मे किसी प्रकार की कोर कसर नही रखी, किन्तु वाहुवली द्वारा की गई सिह गर्जना के पराकाष्ठा पर पहुँचते-पहुँचते तो उनके दोनों हाथो की तर्जनिया उनके कर्णरन्ध्रो मे हठात् प्रविष्ट हो ही गईं। इस प्रकार वाक् युद्ध मे भी भरत पराजित हुए। जब बाहुयुद्ध की बारी आई तो वाहुबली के अनुरोध पर भरत ने अपनी भुजा को ऊपर उठाया वाहुबली ने अपने वाम हस्त से भरत की दक्षिण भुजा को पकडा और सहज ही उसे झुका दिया। तदनतर बाहुबली ने जब अपनी दाहिनी भुजा ऊपर उठाई तो महाराज भरत ने पहले अपने वाम हस्त से

पश्चात् दक्षिण हस्त से और तदनंतर दोनों हाथों से उसे पकड़ कर झुकाने का प्रयास किया पर उन्हें उनके प्रयास में नाम मात्र की भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस पर भरत अपने दोनों पैरों को पृथ्वी तल से ऊपर उठाकर अपने पूरे शरीर की शक्ति लगाने हेतु बाहुबली की भुजा से झूम गये तो बाहुबली भी अपनी दक्षिण भुजा हिला-हिला कर भरत को झूले में झुलाते हुए से बोले -"भैया! आपने मुझे शैशवावस्था में अपनी भुजाओं में लेकर झुलाया था। मुझ पर भ्रातृ स्नेह वशात् किये गये उस उपकार का ऋण चुकाने का अवसंर आज मुझे मिला है।"

शेष मुष्टि युद्ध और दण्ड युद्ध में भी बाहुबली विजयी रहे और भरत पराजित। पराजय की चिंता से दुःखित भरत सोचने लगे क्या कहीं ऐसा तो नहीं है कि बाहुबली ही चक्रवर्ती हो? क्या मैं इसी कारण पराजित हो रहा हूँ। भरत के अन्तर्मन में इस प्रकार के विचार के उद्भव के साथ ही चक्ररत्न के अधिष्ठाता देव ने भरत के समक्ष चक्ररत्न प्रस्तुत किया। पराजय की पीड़ा से पीड़ित भरत ने आकस्मिक आवेश में आ बाहुबली पर चक्ररत्न का प्रहार किया। पर यह देखकर उनके आश्चर्य का पारावार न रहा कि चक्ररत्न बाहुबली की तीन बार प्रदक्षिणा कर भरत की ओर लौट पड़ा।

भरत द्वारा किये गये चक्र प्रहार से बाहुबली भी हठात् ऐसे क्रुद्ध हुए कि अपनी मुष्टि ऊपर उठाकर भरत का प्राणान्त कर देने के लिये शार्दूल की भाति छलाग लगा भरत की ओर बढे। वे दो डग ही आगे बढे होगे कि सहसा उनके अन्तर मे यह विचारवीचि तरंगित हो उठी– "भगवान् ऋषभदेव के वशजो की परंपरा हिसामयी नही अहिसामयी है। तुच्छ एव क्षणिक काम भोगो की कभी न बुझने वाली झूठी पिपासा को शात करने के लिये मुझे बडे भैया की भाति मर्यादा भग करना कदापि उचित नही। किन्तु यह ऊपर उठी मुष्टि मोघ होकर ही गिरे, यह मेरे लिये शोभनीय नही है। उन्होने तत्क्षण उस स्थल पर तत्काल पञ्चमुष्टि लुञ्चन किया और स्वमेव श्रमण धर्म मे प्रव्रजित हो वन की ओर प्रस्थित हुए।"

अपनी वैक्रिय लब्धि के प्रताप से भरत एव बाहुबली की शैलेन्द्र शिखरोपम गगनचुबी देहाकृतियो को जिस समय नटराज आषाढभूति ने दर्शको के समक्ष उपस्थित किया तो सब दर्शक अदृष्ट पूर्व महामानवो की आकृतियो को देखकर अपने-अपने मुकुटो एव शिरो-वेष्टनो को अपने दोनो हाथो से थामकर ऊर्ध्व मुख हो विस्फारित नेत्रो से देखते ही रह गये। और जिस समय उन दोनो महाबलियो के वाक् युद्ध का दृश्य प्रस्तुत किया गया उस समय तो न केवल रगशाला ही अपितु सम्पूर्ण राजगृह नगर एव उसके सन्निवेषतक इस प्रकार हिल उठे मानो

प्रलय-कालीन भूकम्प के भीषण झोंकों ने इन सब को झकझोर डाला हो। राजगृह नगर की पार्श्ववर्ती पर्वत श्रेणियों से उन दोनों महाबलियों की सिंह गर्जना की प्रतिध्वनि बड़े लंबे समय तक गुंजार करती रही। दर्शकों में से अनेक कापुरुष उस दृश्य को देख और उन सिंहनादों को सुनकर संज्ञा विहीन हो धड़ाम से धरा पर लुढ़क पड़े। अनेक दर्शक भयभीत हो अपने स्थान से उठ उठकर रंगशाला में बिखरे अपने मुकुटों शिरोवेष्टनों एवं आभूषणों आदि को वहीं छोड़ इधर उधर भाग खड़े हुये। मगधाधिराज ने अट्टहास पूर्वक भागते हुये भौंचक्के लोगों को गंभीर स्वर में संबोधित करते हुए बार बार कहा—''प्राणाधिक प्रिय अतिथियो! इस तरह घबरा कर भागने की कोई आवश्यकता नहीं। ये सब आज से हजारों और लाखों ही नहीं अपितु कोट्यानुकोटि करोड़ों वर्ष पूर्व घटी घटना का अभिनय मात्र है।'' किन्तु प्रलयकालीन घनघटा की उमड़-घुमड़ कर गर्जन तर्जन के समान हृदय द्रावक दृश्य में मगधेश की बात को सुनने वाला कौन था?

इस भगदड़ को देखकर आषाढ़भूति द्वारा वैक्रिय लब्धि से धृत दो स्वरूपों के मुखारविंद से सान्त्वना भरे स्वर प्रस्फुटित हुये—''मत डरो। अपने-अपने आसन पर बैठ जाइए। बस, अब तो सब अपने-अपने आसन पर आ

जमे। उस आदेश की अनसुनी करने का साहस ही भला किसमे था।

अपने ९९ वे भाइयो के प्रव्रजित हो जाने का कारण स्वय को समझकर महाराज भरत को बडी चिंता हुई। उन्होने बाहुबली के बडे पुत्र को महामहोत्सव के साथ राज्य सिंहासन पर आसीन किया। अब कोई भी नरेश्वर ऐसा नही था, जिसने महाराज भरत की अधीनता स्वीकार नही की हो। अत चक्ररत्न विनीता नगरी की महाराज भरत की आयुधशाला मे प्रविष्ट हुआ।

चक्ररत्न के विनीता मे और तदनतर आयुधशाला मे प्रविष्ट होने के सुखद सवाद को सुनकर न केवल महाराज भरत के ही अपितु समस्त पौरजनो और षट्खण्डो के विभिन्न राज्यो के राजाओ, महामात्यो आदि के हर्ष का भी कोई पारावार न रहा। चक्रवर्ती पद पर अभिषेक करने की सभी प्रकार की अलभ्य एव महार्घ्य सामग्रिया पहले से ही एकत्रित कर ली गई थी। शेष को एकत्रित करना और सब प्रकार की समुचित व्यवस्था निष्पन्न करना सोलह हजार देवो द्वारा एव ३२ हजार मुकुटधारी राजाधिराजाओ द्वारा सेवित महाराज राज राजेश्वर भरत के शासनाधिकारियो के लिये कोई कठिन कार्य नही था। आनन-फानन मे सभी आवश्यक सामग्री का समानयन-सकलन एव सभी प्रकार की व्यवस्थाओ का निष्पादन कर लिया गया।

अति श्रेष्ठ मुहूर्त देखकर महाराज्याभिषेक की तिथि सुनिश्चित की गई। सार्वभौम सम्राट् आदि-चक्रवर्ती महाराज भरत के महाराज्याभिषेक की सूचना विद्युत् की सी गति से छःहों खण्डों में प्रेषित की गई। राज्याभिषेक महामहोत्सव के शुभ सुखद संवाद को श्रवण करते ही छहों खण्डों के जन गण का मानस आनंद की उत्ताल तरंगों से तरंगित हो उद्वेलित हो उठा। उनके हर्ष का दिग् दर्शन करवाना लेखनी और वाणी के वश की बात नहीं। भारत के छहों खण्डों के ग्राम-ग्राम नगर-नगर और डगर डगर में राज्याभिषेक महामहोत्सव के उपलक्ष में समय से बहुत पूर्व ही नगारों और शहनाइयों की धुनों पर अनेक प्रकार की कर्णप्रिय ध्वनियां सम्पूर्ण भारत के गगन मण्डल में गंजरित हो उठीं। कोकिल कंठी संदरियों के कण्ठ से उद्गीरित गीत ध्वनियों से ऐसा आभास होने लगा मानों किन्नर लोक की किन्नरियां अपनी त्रिभुवन ख्यात संगीत मण्डलियों को ले इस धरा पर उतर आई हैं। थोड़े में कहा जाय तो छहों खण्ड नुपूरों की मधुर झन्कार से मुखुरित हो उठे।

जन गण द्वारा प्रतीक्षित तीथि अन्ततोगत्वा आ ही पहुंची। बड़ेधूमधाम से महाराज भरत का सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के छहों खण्डों के एक छत्र प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में राज्याभिषेक किया गया।

उस महाराज्याभिषेक के विषय में जितना भी लिखा

जाय थोडा होगा। इस दृष्टि से केवल यही लिखना पर्याप्त होगा कि महाराज भरत का जिस दिव्य देवर्धि के साथ, जिस ठाट वाट के साथ और जिस हर्षोल्लास पूर्वक राज्याभिषेक किया गया,उस तरह का आज तक कोई भी महामहोत्सव निष्पन्न नही हुआ। महाराज्याभिषेक का दिव्य दृश्य रगशाला मे रगमञ्च पर प्रदर्शित कर देने के पश्चात् नटराज राजन् आषाढभूति ने भरत क्षेत्र के छहो खण्डो पर महाराज भरत के लोकप्रिय शासन के और उसके प्रति सभी खण्डो के विविध वेश विभूषित प्रजाजनो द्वारा प्रकट किये गये आभार प्रदर्शन के दृश्य भी दिखाये।

अभिनय का वास्तविकता में प्रादुर्भाव

भरत के राज्य की सभी सारभूत घटनाओ, स्थितियों एव वास्तविकताओ के अभिनय के रूप मे सागोपाग रूप से रगशाला मे प्रस्तुत कर दिये जाने के अनतर अव वारी आई भरत के स्वरूप दर्शन और कैवल्योपलब्धि के दृश्य का अभिनय करने की। रगशाला रगमञ्च पर अभिनय की पूर्व सूचना के रूप मे वजाई जाने वाली शहनाइयो और दिव्य वाद्य यत्रो की सम्मोहक कर्णप्रिय रागिनियो की गुजार से पूर्व ही रगशाला दर्शको से खचाखच भर गई। सभी दर्शको की आखो एव उनके मुखमण्डल के भावो से यही प्रश्न प्रतीत होता था कि देखे महाराज भरत

को केवलज्ञान केवलदर्शन की उपलब्धि किस प्रकार होती है? दर्शकों की लंबी प्रतीक्षा के पश्चात् अभिनय के प्रारंभ होने की पूर्व सूचना देने वाली शहनाइयों एवं वाद्य यंत्रों के सम्मोहक स्वर संपूर्ण वातावरण में गुंजरित हो उठे। सहसा रंगमञ्च का पटोद्घाटन हुआ। सभी दर्शक निर्निमेष दृष्टि से अपूर्व अद्भुत उत्कण्ठा पूर्वक रंगमञ्च पर किसी के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

सहसा सूत्रधार का गंभीर स्वर उस अति विस्तीर्ण सुविशाल रंगशाला में गुंजरित हो उठा—"सावधान! सतर्क एवं विनयावनत मस्तक हो सब सुन लें— सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के छहों खण्डों के एक छत्र सार्वभौम सम्राट् महाराज भरत चक्रवर्ती अपने शीश महल में शुभागमन कर रहे हैं। सावधान! सावधान!! सावधान!!!"

तत्क्षण पट परिवर्तन हुआ और सब दर्शकों ने हृदय थामे अपलक दृष्टि से देखा कि अलकापुरी के इन्द्रभवन को भी अपनी चमक-दमक और सौन्दर्य से लज्जित कर देने वाले शीश महल में महाराज भरत उस समय के मानव शरीर की अवगाहना के समान आकार के अति सुंदर अति सुस्पष्ट प्रतप्त स्वर्ण के समान कान्तिमान अपनी देह पर धृत परिधानों एवं रत्न जटित जाम्बु-नद स्वर्ण के आभूषणों को देखने लगे। नटराज आषाढ़भूति ने अपनी वैक्रियलब्धि से भरतेश्वर के रूप में अपने आप को इस प्रकार ऐसे शीष महल में प्रस्तुत किया कि सभी

दर्शक अपने आपको तृतीय आरक के अन्तिम भाग के अन्तिम चरण मे उपस्थित अनुभव करने लगे। प्राचीन ग्रथो मे उपलब्ध भरतेश्वर भरत के ऐश्वर्य और शारीरिक सपदा का जिस प्रकार उल्लेख उन दर्शको को पढने-सुनने मे आया था वह सब भरतेश्वर का अभिनय कर रहे आषाढभूति द्वारा प्रस्तुत किये गये भरत के प्रतिरूप मे लगभग शतप्रतिशत उन्हे दृष्टिगोचर हो रहा था।

एडी से चोटी तक अपनी साज-सज्जा वेश-भूषा एव वस्त्रालकारो पर बडी सूक्ष्मता से दृष्टि निपात करते हुये भरत के वाम कर की कनिष्ठा की मुद्रिका उस शीश महल के अति-श्रेष्ठ स्फटिक रत्न मय तल पर गिर पडी। अगूठी के गिरने की ध्वनि ने उनका ध्यान आकर्षित किया। उन्होने अगूठी से रिक्त अगुली पर दृष्टि निपात किया। मुद्रिका विहीन कनिष्ठा उन्हे अन्य अगोपागो से कतिपय अशो मे निष्प्रभ सी प्रतीत हुई। "देखे अलकरणो से विहीन मेरे अन्यान्य अगोपाग किस प्रकार प्रतीत होते हैं, इस प्रकार विचार कर उन्होने दोनो हाथो की मुद्रिकाओ को उतार डाला। अलकरण विहीन हाथो का पूर्व से कुछ परिवर्तित स्वरूप देखकर उन्हे अन्य सभी अगोपागो के वास्तविक स्वरूप को देखने की उत्कठा उनके अन्तर मन मे प्रबल वेग से उद्भूत हुई। उन्होने कर ककण और तदनतर गले मे झूमती हुई देवो द्वारा

प्रदत्त वैजयन्ती आदि मालाओं को उतारा तो वास्तविक निज स्वरूप को देखने की उत्कंठा और अधिक प्रबल वेग से अभिवृद्ध हुई। उन्होंने कानों के कुण्डलों को और अपने अंगोंपांग के सभी अलंकारों को उतार डाला और दर्पण में अपने अंग प्रत्यंग को देखने लगे। उत्कंठा और बढ़ी उन्होंने मुकुट, उत्तरीय और कटिवस्त्र के अतिरिक्त अन्य सभी वस्त्राभरणों को भी उतार दिया। उनके मुख से सहसा ये आन्तरिक उद्‌गार प्रस्फुटित हुये—"अरे! यह है मेरा वास्तविक स्वरूप, मैं अब तक कितना भुलावे में रहा। धिक्कार है मझे! मैंने अपने वास्तविक स्वरूप को बाह्याडंबर के घटाटोप से छुपाये रखा। अरे! मैंने आत्मदेव के आवरण शरीर के वास्तविक स्वरूप को ही भौतिक आवरणों से ढंका और अपने आत्मदेव को भी भौतिक प्रपञ्चों की विनाशशील ऋद्धियों, सम्पदाओं और राज्यों को बटोरने में लगाकर इसकी क्षणभंगुरता पर नहीं सोचा है। उस चक्रवर्ती पद की प्राप्ति एवं उपभोग में मैंने कितना लंबा अनमोल समय व्यर्थ ही व्यतीत कर दिया। क्या यह मेरी चिंतामणि रत्न को कौए को उड़ाने के लिये गहरे अथाह कीचड़ में फेंक देने जैसी मूर्खता नहीं है?"

इन उद्‌गारों की अभिव्यक्ति के साथ ही आषाढ़भूति की चिंतन-धारा ने भी सहसा अप्रत्याशित मोड़ ले लिया, जिसे कोई भी दर्शक तिलमात्र भी नहीं ताड़ सका।

भरत के वेश मे ही आषाढभूति का चिंतन पश्चात्ताप, प्रायश्चित एव आत्मालोचन के रूप मे परिवर्तित हो गया। प्रत्येक श्रोता के हृदय पर असग भावना की छाप अंकित करते हुए, अभिनय मे प्रस्तुत किये गये भरत के स्वरूप के मुखारविंद से आषाढभूति के अन्तर्द्वन्द्व की विरक्ति रस गगा दयनीयता से ओत प्रोत स्वर मे प्रवाहित हो उठी। हाय मैं कितना अभागा हू, कैसा मूर्ख हू चितामणि रत्न को मुट्ठी मे लेकर भी विषय कषाय के इन क्षण भगुर और दुर्गतियो के दाता विषय भोगो के उपभोग मे व्यर्थ ही खो दिया। हाय! मैं अव किससे पूछू कि वह मेरा वीता हुआ अनमोल समय किस तरह लौटकर आ सकता है। बीती घडियो को तो उच्च जाति के अश्व भी नही पकड सकते। अस्तु अव भी समय है अपने कृत-कुकर्मो के प्रायश्चित का, अपने कर्म पुञ्ज को तपश्चर्या के हुताश मे भस्मावशिष्ट कर देने का। शाश्वत सुख प्रदायी धर्म पथ को, श्रमण धर्म को छोड केवल इन क्षणभगुर और अन्ततोगत्वा दुर्गतियो का दयनीय पात्र वना देने वाले विषयोपभोगो के लिये मैंने अनेक प्रकार के कार्य कलाप करते हुये जो विभिन्न रूप धारण किये-क्या मेरे इस स्वरूप को बहुरूपिये के वेश-परिवर्तन की सज्ञा नही दी जा सकती? धिक्कार है मुझे जो विमुक्ति-पोत पर आरुढ हो मुक्ति के प्रथम सौपान के समीप पहुच जाने के पश्चात् भी आत्मोत्कर्ष के पथ से परिभ्रष्ट हो विषय

कषायों के घृणित गहन दल दल में धंस गया हूं—फंस गया हूं। मैं अभी धर्म दिवाकर की शरण में जा ठुकराता हूं इन सभी कामोपभोगों को, मैं भाव श्रमण तो हो गया अब मैं द्रव्य श्रमण का रूप अवश्य मेव इसी क्षण धारण करुंगा।" यह कहते हुए ज्योंही भरत वेशधर आषाढ़भूति ने पञ्चमुष्टिक लुञ्चन के लिये अपना दक्षिण कर ऊपर उठाया कि उन्हें तत्क्षण उत्कृष्ट कोटि के अध्यवसायों के परिणामस्वरूप केवल ज्ञान और केवल दर्शन की युगपद् उपलब्धि हो गई। और उसी क्षण रंगशाला के ऊपर गगन मण्डल में देव दुंदुभियों की सुमधुर सम्मोहक ध्वनियों के साथ ही केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिये आये हुये देवों के कर कमलों से पांच वर्ण के दिव्य कुसुमों की वृष्टि प्रारम्भ हो गई।

रंगशाला में उपस्थित राजा, महाराजा और सभी दर्शक अब तक यही समझ रहे थे कि नटराज ने अपने अलौकिक कला कौशल से देव दुंदुभियां बजवाने के साथ साथ देवों द्वारा पुष्प वृष्टि भी करवा दी। किन्तु तब तक पञ्च मुष्टिक लुञ्चन के अनंतर साधु के वेश में उपस्थित आषाढ़भूति के चरण कमलों में देवों के मुकुट झुकते हुये देखकर मगधेश्वर के साथ ही साथ सभी ने मुनि आषाढ़भूति को विधिवत् वंदन किया। मगधेश के मुख से हठात् ये शब्द प्रस्फुटित हो उठे—"अभिनय सत्य हो गया।"

अ भा श्री वर्द्धमान वीतराग सघ के सूत्रधार परम श्रद्धेय, प र श्री शीतलराज जी म सा, प र श्री चम्पक मुनि जी म सा, एव व्याख्यान वाचस्पति श्री धन्ना मुनि जी म सा आदि ठाणा-३ के स्वस्थ व दीर्घायुष जीवन की मगलमय कामनाओं के साथ--

श्रीमती मीमकवर सिघवी
पावटा, जोधपुर (राज)
जोधपुर फोन ४४०४८
जयपुर फोन ७२१८४/५५१३९४